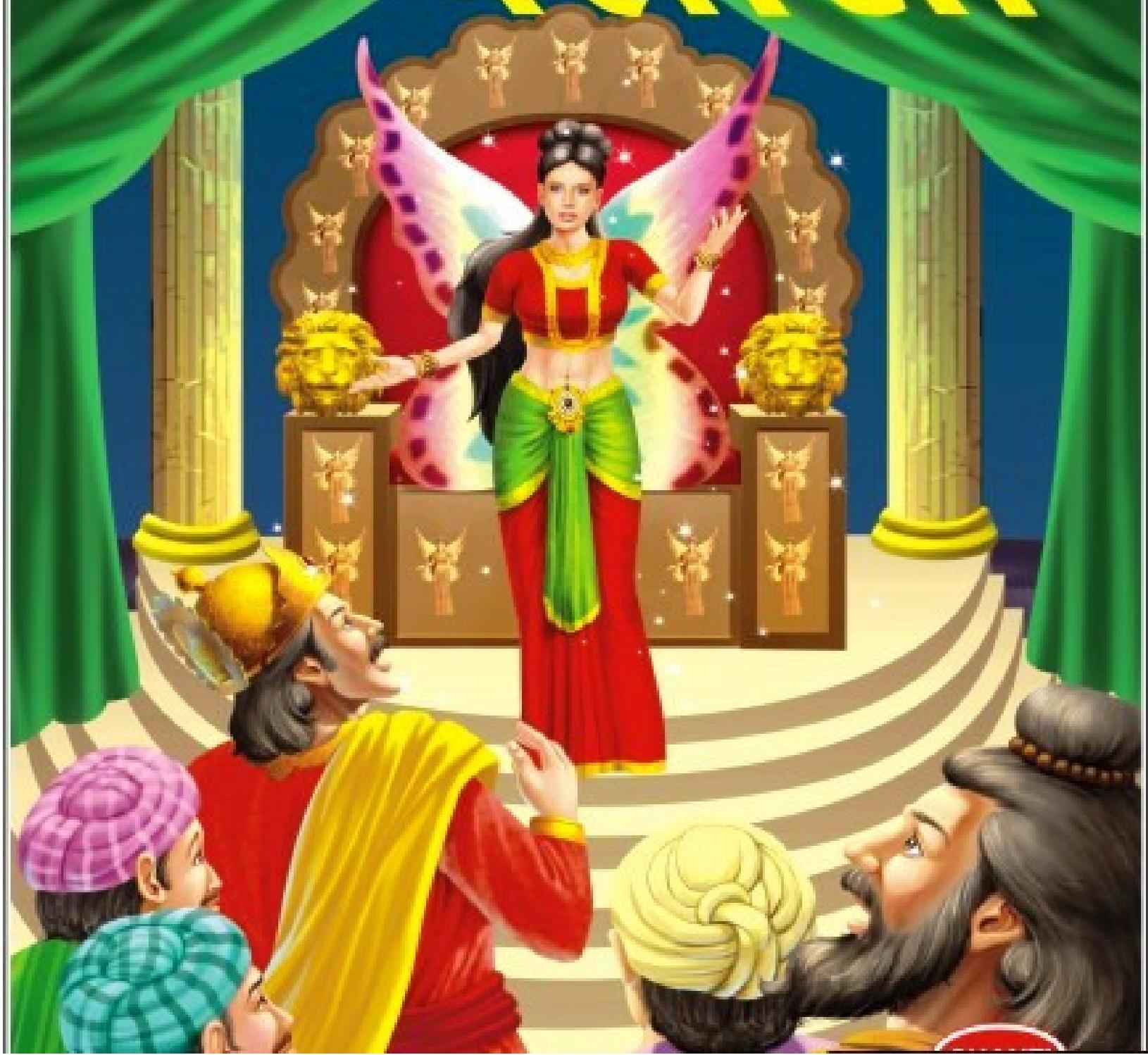


# सिंहासन बद्धीसी



# सिंहासन बत्तीसी

अद्भुत कहानी

Sr no.	पुतली नाम	क्र.
1	पहली पुतली रत्नमंजरी	7
2	दूसरी पुतली चित्तलेखा	9
3	तीसरी पुतली चन्द्रकला	11
4	चौथी पुतली कामकंदला	13
5	पांचवी पुतली लीलावती	15
6	छठी पुतली रविभामा	17
7	सातवी पुतली कौमुदी	19
8	आठवी पुतली पुष्पवती	21
9	नौवी पुतली मधुमालती	23
10	दसवी पुतली प्रभावती	25
11	ग्यारहवी पुतली त्रिलोचना	27
12	बारहवी पुतली पद्मावती	29
13	तेरहवी पुतली कीर्तिमती	31
14	चौदहवीं पुतली सुनयना	33
15	पंद्रहवीं पुतली सुन्दरवती	35
16	सोलहवीं पुतली सत्यवती	37
17	सतहवीं पुतली विद्यावती	38
18	अठारहवीं पुतली तारावती	39
19	उन्नीसवीं पुतली रूपरेखा	41
20	बीसवीं पुतली ज्ञानवती	43
21	इक्कीसवीं पुतली चन्द्रज्योति	45
22	बाइसवीं पुतली अनुरोधवती	47
23	तेइसवीं पुतली धर्मवती	49
24	चौविसवीं पुतली करुणावती	51
25	पच्चीसवीं पुतली त्रिनेत्री	53
26	छब्बीसवीं पुतली मृगनयनी	55
27	सत्ताविसवीं पुतली मलयवती	58

---

28	अद्वाविसवी पुतली वैदेही	61
29	उन्तीसवी पुतली मानवती	65
30	तीसवी पुतली जयलक्ष्मी	68
31	इक्कतीसवी पुतली कौशल्या	71
32	बत्तीसवी पुतली रानी रूपवती	73
33	उपसंहार	74

---

बहुत दिनों की बात है । उज्जैन नगरी में राजा भोंज नाम का एक राजा राज करता था । वह बड़ा दानी और धर्मात्मा था । न्याय ऐसा करता कि दूध और पानी अलग-अलग हो जाये । उसके राज में शेर और बकरी एक घाट पानी पीते थे । प्रजा सब तरह से सुखी थी ।

नगरी के पास ही एक खेत था, जिसमें एक आदमी ने तरह-तरह की बेलें और साग-भाजियां लगा रखी थीं । एक बार की बात है कि खेत में बड़ी अच्छी फसल हुई । खूब तरकारियां उतरीं, लेकिन खेत के बीचों-बीच थोड़ी-सी जमीन खाली रह गई । बीज उस पर डाले थे, पर जमे नहीं । सो खेत वाले न क्या किया कि वहां खेत की रखवाली के लिए एक मचान बना लिया । पर उसपर वह जैसे ही चढ़ा कि लगा चिल्लाने- “कोई है? राजा भोज को पकड़ लाओं और सजा दो ।”

होते-होते यह बात राजा के कानों में पहुंची । राजा ने कहा, “मुझे उस खेत पर ले चलो । मैं सारी बातें अपनी आंखों से देखना और कानों से सुनना चाहता हूँ ।”

लोग राजा को ले गये । खेत पर पहुंचने ही देखते क्या हैं कि वह आदमी मचान पर खड़ा है और कह रहा है- “राजा भोज को फौरन पकड़ लाओं और मेरा राज उससे ले लो । जाओ, जल्दी जाओं ।”

यह सुनकर राजा को बड़ा डर लगा । वह चुपचाप महल में लौटा आया । फिक्र के मारे उसे रातभर नींद नहीं आयी । ज्यों-त्यों रात बिताई । सवेरा होते ही उसने अपने राज्य के ज्योतिषियों और पंडितों को इकट्ठा किया उन्होंने हिसाब लगाकर बताया कि उस मचान के नीचे धन छिपा है । राजा ने उसी समय आज्ञा दी कि उस जगह को खुदवाया जाय ।

खोदते-खोदते जब काफी मिट्टी निकल गई तो अचानक लोगों ने देखा कि नीचे एक सिंहासन है । उनके अचरज का ठिकाना न रहा । राजा को खबर मिली तो उसने उसे बाहर निकालने को कहा, लेकिन लाखों मजदूरों के जोर लगाने पर भी वह सिंहासन टस-से मस-न हुआ । तब एक पंडित ने बताया कि यह सिंहासन देवताओं का बनाया हुआ है । अपनी जगह से तब तक नहीं हटेगा जब तक कि इसकों कोई बलि न दी जाय ।

राजा ने ऐसा ही किया । बलि देते ही सिंहासन ऐसे ऊपर उठ आया, मानों फूलों का हो । राजा बड़ा खुश हुआ । उसने कहा कि इसे साफ करो । सफाई की गई । वह सिंहासन ऐसा चमक उठा कि अपने मुंह देख लो । उसमें भांति-भांति के रत्न जड़े थे, जिनकी चमक से आंखें चौधियाती थीं । सिंहासन के चारों ओर आठ-आठ पुतलियां बनी थीं । उनके हाथ में कमल का एक-एक फूल था । कहीं-कहीं सिंहासन का रंग बिगड़ गया था । कहीं कहीं से रत्न निकल गये थे । राजा ने हुक्म दिया कि खजाने से रुपया लेकर उसे ठीक कराओ । सिंहासन को ठीक होने में पांच महीने लगे । अब सिंहासन ऐसा हो गया था । कि जो भी देखता, देखता ही रह जाता । पुतलियां ऐसी लगतीं, मानो अभी बोल उठेंगीं ।

राजा ने पंडितों को बुलाया और कहा, “तुम कोई अच्छा मुद्रूर्त निकालो । उसी दिन मैं इस सिंहासन पर बैठूंगा ।” एक दिन तय किया गया । दूर-दूर तक लोगों को निमंत्रण भेजे गये । तरह-तरह के बाजे बजने लगे, महलों में खुशियों मनाई जाने लगीं ।

सब लोगों के सामने राजा सिंहासन के पास जाकर खड़े हो गये । लेकिन जैसे ही उन्होंने अपना दाढ़िना पैर बढ़ाकर सिंहासन पर रखना चाहा कि सब-की-सब पुतलियां खिलखिला कर हँस पड़ी । लोगों को बड़ा अचंभा हुआ कि ये बेजान पुतलियां कैसें हँस पड़ी । राजा ने डर के मारे अपना पैर खींच लिया और पुतलियों से बोला, “ओ पुतलियों ! सच-सच बताओं कि तुम क्यों हँसी ?”

पहली पुतली का नाम था । **रत्नमंजरी** । राजा की बात सुनकर वह बोली, ”राजन ! आप बड़े तेजस्वी हैं, धनी हैं, बलवान हैं, लेकिन घमंड करना ठीक नहीं । सुनो ! जिस राजा का यह सिंहासन है, उसके यहां तुम जैसे तो हजारों नौकर-चाकर थे ।”

यह सुनकर राजा आग-बबूला हो गया । बोला, “मैं अभी इस सिंहासन को तोड़कर मिट्टी में मिला दूंगा ।”

पुतली ने शांति से कहा, “महाराज ! जिस दिन राजा विक्रमादित्य से हम अलग हुई उसी दिन हमारे भाग्य फूट गये, हमारे लिए सिंहासन धूल में मिल गया ।”

राजा का गुस्सा दूर हो गया । उन्होंने कहा, “पुतली रानी ! तुम्हारी बात मेरी समझ में नहीं आयी । साफ-साफ कहो ।” पुतली ने कहा, “अच्छा सुनो ।”

(इस कहानी में बत्तीस पुतलिया हैं जिनके नाम हैं

1. रत्नमंजरी
2. चित्तलेखा
3. चन्द्रकला
4. कामकंदला
5. लीलावती
6. रविभासा
7. कौमुदी
8. पुष्पवती
9. मधुमालती
10. प्रभावती
11. तिलोचना

12. पद्मावती
13. कीर्तिमती
14. सुनयना
15. सुन्दरवती
16. सत्यवती
17. विद्यावती
18. तारावती
19. रूपरेखा
20. ज्ञानवती
21. चन्द्रज्योति
22. अनुरोधवती
23. धर्मवती
24. करुणावती
25. लिनेती
26. मृगनयनी
27. मलयवती
28. वैदेही
29. मानवती
30. जयलक्ष्मी
31. कौशल्या
32. रानी रूपवती

## पहली पुतली 'रत्नमंजरी'

अंबावती में एक राजा राज करता था । उसका बड़ा रौब-दाब था । वह बड़ा दानी था । उसी राज्य में धर्मसेन नाम का एक और बड़ा राजा हुआ । उसकी चार रानियां थीं । एक थी ब्राह्मण दूसरी क्षत्रिय, तीसरी वैश्य और चौथी शूद्र । ब्राह्मणी से एक पुत्र हुआ, जिसका नाम ब्राह्मणीत रखा गया । क्षत्रियां से तीन बेटे हुए । एक का नाम शंख, दूसरे का नाम विक्रमादित्य और तीसरे का भर्तुहरि रखा गया । वैश्य से एक लड़का हुआ, जिसका नाम चंद्र रखा गया । शूद्राणी से धन्वन्तारि हुए ।

जब वे लड़के बड़े हुए तो ब्राह्मणी का बेटा दीवान बना । बाद में वहां बड़े झगड़े हुए । उनसे तंग आकर वह लड़का घर से निकल पड़ा और धारापूर आया । हे राजन् ! वहां का राज तुम्हारा बाप था । उस लड़के ने किया क्या कि राजा को मार डाला और राज्य अपने हाथ में करके उज्जैन पहुंचा । संयोग की बात कि उज्जैन में आते ही वह मर गया । उसके मरने पर क्षत्रियां का बेटा शंख गद्दी पर बैठा । कुछ समय बाद विक्रमादित्य ने चालाकी से शंख को मरवा डाला और स्वयं गद्दी पर बैठ गया ।

एक दिन राजा विक्रमादित्य शिकार खेलने गया । बियावान जंगल । रास्ता सूझे नहीं । वह एक पेड़ चढ़ गया । ऊपर जाकर चारों ओर निगाह दौड़ाई तो पास ही उसे एक बहुत बड़ा शहर दिखाई दिया । अगले दिन राजा ने अपने नगर में लौटकर उसे बुलवाया । वह आया । राजा ने आदर से उसे बिठाया और शहर के बारे में पूछा तो उसने कहा, “वहां बाहुबल नाम का राजा बहुत दिनों से राज करता है । आपके पिता गंधर्वसेन उसके दीवान थे । एक बार राजा को उन पर अविश्वास हो गया और उन्हें नौकरी से अलग कर दिया । गंधर्वसेन अंबावती नगरी में आये और वहां के राजा हो गये । हे राजन् ! आपको जग जानता है, लेकिन जब तक राजा बाहुबल आपका राजतिलक नहीं करेगा, तबतक आपका राज अचल नहीं होगा । मेरी बात मानकर राजा के पास जाओं और प्यार में भुलाकर उससे तिलक कराओ ।”

विक्रमादित्य ने कहा, “अच्छा ।” और वह लूतवरण को साथ लेकर वहां गया । बाहुबल ने बड़े आदर से उसका स्वागत किया और बड़े प्यार से उसे रखा । पांच दिन बीत गये । लूतवरण ने विक्रमादित्य से कहा, “जब आप विदा लोगे तो बाहुबल आपसे कुछ मांगने को कहेगा । राजा के घर में एक सिंहासन हैं, जिसे महादेव ने राजा इन्द्र को दिया था । और इन्द्र ने बाहुबल को दिया । उस सिंहासन में यह गुण है कि जो उसपर बैठेगा । वह सात द्वीप नवखण्ड पृथ्वी पर राज करेगा । उसमें बहुत-से जवाहरात जड़े हैं । उसमें सांचे में ढालकर बत्तीस पुतलियां लगाई गई हैं । हे राजन् ! तुम उसी सिंहासन को मांग लेना ।”

अगले दिन ऐसा ही हुआ । जब विक्रमादित्य विदा लेने गया तो उसने वही सिंहासन मांग लिया । सिंहासन मिल गया । बाहुबल ने विक्रमादित्य को उसपर विठाकर उसका तिलक किया और बड़े प्रेम से उसे विदा किया ।

इससे विक्रमादित्य का मान बढ़ गया । जब वह लौटकर घर आया तो दूर-दूर के राजा उससे मिलने आये । विक्रमादित्य चैन से राज करने लगा ।

एक दिन राजा ने सभा की और पंडितों को बुलाकर कहा, “मैं एक अनुष्ठान करना चाहता हूँ । आप देखकर बतायें कि मैं इसके योग्य हूँ । या नहीं ।” पंडितों ने कहा, “आपका प्रताप तीनों लोकों में छाया हुआ है । आपका कोई बैरी नहीं । जो करना हो, कीजिए ।” पंडितों ने यह भी बताया कि अपने कुनबे के सब लोगों को बुलाइये, सवा लाख कन्यादान और सवा लाख गायें दान कीजिए, ब्राह्मणों को धन दीजियें, जमींदारों का एक साल का लगान माफ कर दीजिये ।”

राजा ने यह सब किया । एक बरस तक वह घर में बैठा पुराण सुनता रहा । उसने अपना अनुष्ठान इस ढंग से पूरा किया कि दुनिया के लोग धन्य – धन्य करते रहे ।

इतना कहकर पुतली बोली, “हे राजन्! तुम ऐसे हो तो सिंहासन पर बैठो ।”

पुतली की बात सुनकर राजा भोज ने अपने दीवान को बुलाकर कहा, ”आज का दिन तो गया । अब तैयारी करो, कल सिंहासन पर बैठेंगे ।”

अगले दिन जैसे ही राजा ने सिंहासन पर बैठना चाहा कि दूसरी पुतली, हैं जो राजा विक्रमादित्य जैसा गुणी हो ।”

राजा ने पूछा, “विक्रमादित्य में क्या गुण थे?”

पुतली ने कहा, “सुनो ।”

## दूसरी पुतली 'चित्रलेखा'

एक बार राजा विक्रमादित्य की इच्छा योग साधने की हुई । अपना राजपाट अपने छोटे भाई भर्तृहरि को सौंपकर वह अंग में भभूत लगाकर जंगल में चले गये ।

उसी जंगल में एक ब्राह्मण तपस्या कर रहा था । एक दिन देवताओं ने प्रसन्न होकर उस ब्राह्मण को एक फल दिया और कहा, “जो इसे खा लेगा, वह अमर हो जायगा ।” ब्राह्मण ने उस फल को अपनी ब्राह्मणी को दे दिया । ब्राह्मणी ने उससे कहा, “इसे राजा को दे आओं और बदले में कुछ धन ले आओ ।” ब्राह्मण ने जाकर वह फल राजा को दे दिया । राजा अपनी रानी को बुहत प्यार करता था, उससे कहा, “इसे अपनी रानी का दे दिया । रानी की दोस्ती शहर के कोतवाल से थी । रानी ने वह फल उस दे दिया । कोतवाल एक वेश्या के पास जाया करता था । वह फल वेश्या के यहां पहुंचा । वेश्या ने सोचा कि, “मैं अमर हो जाऊंगी तो बराबर पाप करती रहूंगी । अच्छा होगा कि यह फल राजा को दे दूँ । वह जीयेगा तो लाखों का भला करेगा ।” यह सोचकर उसने दरबार में जाकर वह फल राजा को दे दिया । फल को देखकर राजा चकित रह गया । उसे सब भेद मालूम हुआ तो उसे बड़ा दुःख हुआ । उसे दुनिया बेकार लगने लगी । एक दिन वह बिना किसी से कहे-सुने राजघाट छोड़कर घर से निकल गया । राजा इंद्र को यह मालूम हुआ तो उन्होंने राज्य की रखवाली के लिए एक देव भेज दिया ।

उधर जब राजा विक्रमादित्य का योग पूरा हुआ तो वह लौटे । देव ने उन्हे रोकां विक्रमादित्य ने उससे पूछा तो उसने सब हाल बता दिया । विक्रमादित्य ने अपना नाम बताया, फिर भी देव उन्हें न जाने दिया । बोला, “तुम विक्रमाकिंदत्य हो तो पहले मुझसे लड़ो ।”

दोनों में लड़ाई हुई । विक्रमादित्य ने उसे पछाड़ दिया । देव बोला, “तुम मुझे छोड़ दो । मैं तुम्हारी जान बचाता हूँ ।” राजा ने पूछा, “कैसे?”

देव बोला, “इस नगर में एक तेली और एक कुम्हार तुम्हें मारने की फिराक में है । तेजी पाताल में राज करता है । और कुम्हार योगी बना जंगल में तपस्या करता है । दोनों चाहते हैं कि एक दूसरे को और तुमको मारकर तीनों लोकों का राज करें ।

“तुम विक्रमादित्य हो तो पहले मुझसे’ लड़ो ।”

योगी ने चालाकी से तेली को अपने वश में कर लिया है । और वह अब सिरस के पेड़ पर रहता है । एक दिन योगी तुम्हें बुलायगा और छल करके ले जायगा । जब वह देवी को दंडवत करने को कहे तो तुम कह देना कि मैं राजा हूँ । दण्डवत करना नहीं जानता । तुम बताओं कि कैसे करूँ । योगी जैसे ही सिर झुकाये, तुम खांडे से उसका सिर काट देना । फिर उसे और तेली को सिरस के पेड़ से उतारकर देवी के आगे खौलते तेल के कड़ाह में डाल देना ।”

राजा ने ऐसा ही किया । इससे देवी बहुत प्रसन्न हुई और उसने दो वीर उनके साथ भेज दिये । राजा अपने घर आये और राज करने लगे । दोनों वीर राजा के बस में रहे और उनकी मदद से राजा ने आगे बड़े-बड़े काम किये ।

इतना कहकर पुतली बोली, “राजन्! क्या तुममें इतनी योग्यता है? तुम जैसे करोड़ो राजा इस भूमि पर हो गये हैं ।”  
दूसरा दिन भी इसी तरह निकल गया ।

तीसरे दिन जब वह सिंहासन पर बैठने को हुआ तो रविभामा नाम की तीसरी पुतली ने उसे रोककर कहा, “हे राजन्! यह क्या करते हो? पहले विक्रमादित्य जैसे काम करों, तब सिंहासन पर बैठना!”

राजा ने पूछा, “विक्रमादित्य ने कैसे काम किये थे?”

पुतली बोली, “लो, सुनो ।”

## तीसरी पुतली चन्द्रकला

तीसरी पुतली चन्द्रकला ने जो कथा सुनाई वह इस प्रकार है- एक बार पुरुषार्थ और भाग्य में इस बात पर ठन गई कि कौन बड़ा है । पुरुषार्थ कहता कि बगैर मेहनत के कुछ भी सम्भव नहीं है जबकि भाग्य का मानना था कि जिसको जो भी मिलता है भाग्य से मिलता है परिश्रम की कोई भूमिका नहीं होती है । उनके विवाद ने ऐसा उग्र रूप ग्रहण कर लिया कि दोनों को देवराज इन्द्र के पास जाना पड़ा । झगड़ा बहुत ही पेचीदा था इसलिए इन्द्र भी चकरा गए । पुरुषार्थ को वे नहीं मानते जिन्हें भाग्य से ही सब कुछ प्राप्त हो चुका था । दूसरी तरफ अगर भाग्य को बड़ा बताते तो पुरुषार्थ उनका उदाहरण प्रस्तुत करता जिन्होंने मेहनत से सब कुछ अर्जित किया था । असमंजस में पड़ गए और किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँचे । काफी सोचने के बाद उन्हें विक्रमादित्य की याद आई । उन्हें लगा सारे विश्व में इस झगड़े का समाधान सिर्फ वही कर सकते हैं ।

उन्होंने पुरुषार्थ और भाग्य को विक्रमादित्य के पास जाने के लिए कहा । पुरुषार्थ और भाग्य मानव भेष में विक्रम के पास चल पड़े । विक्रम के पास आकर उन्होंने अपने झगड़े की बात रखी । विक्रमादित्य को भी तुरन्त कोई समाधान नहीं सूझा । उन्होंने दोनों से छः महीने की मोहलत मांगी और उनसे छः महीने के बाद आने को कहा । जब वे चले गए तो विक्रमादित्य ने काफी सोचा । किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँच सके तो उन्होंने सामान्य जनता के बीच भेष बदलकर घूमना शुरू किया । काफी घूमने के बाद भी जब कोई संतोषजनक हल नहीं खोज पाए तो दूसरे राज्यों में भी घूमने का निर्णय किया । काफी भटकने के बाद भी जब कोई समाधान नहीं निकला तो उन्होंने एक व्यापारी के यहाँ नौकरी कर ली । व्यापारी ने उन्हें नौकरी उनके यह कहने पर कि जो काम दूसरे नहीं कर सकते हैं वे कर देंगे, दी ।

कुछ दिनों बाद वह व्यापारी जहाज पर अपना माल लादकर दूसरे देशों में व्यापार करने के लिए समुद्री रास्ते से चल पड़ा । अन्य नौकरों के अलावा उसके साथ विक्रमादित्य भी थे । जहाज कुछ ही दूर गया होगा कि भयानक तूफान आ गया । जहाज पर सवार लोगों में भय और हताशा की लहर दौड़ गई । किसी तरह जहाज एक टापू के पास आया और वहाँ लंगर डाल दिया गया । जब तूफान समाप्त हुआ तो लंगर उठाया जाने लगा । मगर लंगर किसी के उठाए न उठा । अब व्यापारी को याद आया कि विक्रमादित्य ने यह कहकर नौकरी ली थी कि जो कोई न कर सकेगा वे कर देंगे । उसने विक्रम से लंगर उठाने को कहा । लंगर उनसे आसानी से उठ गया । लंगर उठते ही जहाज ऐसी गति से बढ़ गया कि टापू पर विक्रम छूट गए ।

उनकी समझ में नहीं आया क्या किया जाए । द्वीप पर घूमने-फिरने चल पड़े । नगर के द्वार पर एक पट्टिका टंगी थी जिस पर लिखा था कि वहाँ की राजकुमारी का विवाह विक्रमादित्य से होगा । वे चलते-चलते महल तक पहुँचे । राजकुमारी उनका परिचय पाकर खुश हुई और दोनों का विवाह हो गया । कुछ समय बाद वे कुछ सेवकों को साथ ले अपने राज्य की ओर चल पड़े । रास्ते में विश्राम के लिए जहाँ डेरा डाला वहीं एक सन्यासी से उनकी भेंट हुई । सन्यासी ने उन्हें एक माला

और एक छड़ी दी । उस माला की दो विशेषताएँ थीं- उसे पहननेवाला अदृश्य होकर सब कुछ देख सकता था तथा गले में माला रहने पर उसका हर कार्य सिद्ध हो जाता । छड़ी से उसका मालिक सोने के पूर्व कोई भी आभूषण मांग सकता था ।

सन्यासी को धन्यवाद देकर विक्रम अपने राज्य लौटे । एक उद्यान में ठहरकर संग आए सेवकों को वापस भेज दिया तथा अपनी पत्नी को संदेश भिजवाया कि शीघ्र ही वे उसे अपने राज्य बुलवा लेंगे ।

उद्यान में ही उनकी भेंट एक ब्राह्मण और एक भाट से हुई । वे दोनों काफी समय से उस उद्यान की देखभाल कर रहे थे । उन्हें आशा थी कि उनके राजा कभी उनकी सुध लेंगे तथा उनकी विपन्नता को दूर करेंगे । विक्रम पसीज गए । उन्होंने सन्यासी वाली माला भाट को तथा छड़ी ब्राह्मण को दे दी । ऐसी अमूल्य चीजें पाकर दोनों धन्य हुए और विक्रम का गुणगान करते हुए चले गए ।

विक्रम राज दरबार में पहुँचकर अपने कार्य में संलग्न हो गए । छः मास की अवधि पूरी हुई तो पुरुषार्थ तथा भाग्य अपने फैसले के लिए उनके पास आए । विक्रम ने उन्हें बताया कि वे एक-दूसरे के पूरक हैं । उन्हें छड़ी और माला का उदाहरण याद आया । जो छड़ी और माला उन्हें भाग्य से सन्यासी से प्राप्त हुई थीं उन्हें ब्राह्मण और भाट ने पुरुषार्थ से प्राप्त किया । पुरुषार्थ और भाग्य पूरी तरह संतुष्ट होकर वहाँ से चले गए ।

## चौथी पुतली कामकंदला

चौथी पुतली कामकंदला की कथा से भी विक्रमादित्य की दानवीरता तथा त्याग की भावना का पता चलता है । वह इस प्रकार है-

एक दिन राजा विक्रमादित्य दरबार को सम्बोधित कर रहे थे तभी किसी ने सूचना दी कि एक ब्राह्मण उनसे मिलना चाहता है । विक्रमादित्य ने कहा कि ब्राह्मण को अन्दर लाया जाए । जब ब्राह्मण उनसे मिला तो विक्रम ने उसके आने का प्रयोजन पूछा । ब्राह्मण ने कहा कि वह किसी दान की इच्छा से नहीं आया है, बल्कि उन्हें कुछ बतलाने आया है । उसने बतलाया कि मानसरोवर में सूर्योदय होते ही एक खम्भा प्रकट होता है जो सूर्य का प्रकाश ज्यों-ज्यों फैलता है ऊपर उठता चला जाता है और जब सूर्य की गर्मी अपनी पराकाष्ठा पर होती है तो सूर्य को स्पर्श करता है । ज्यों-ज्यों सूर्य की गर्मी घटती है छोटा होता जाता है तथा सूर्यास्त होते ही जल में विलीन हो जाता है । विक्रम के मन में जिज्ञासा हुई कि ब्राह्मण का इससे अभिप्राय क्या है । ब्राह्मण उनकी जिज्ञासा को भाँप गया और उसने बतलाया कि भगवान इन्द्र का दूत बनकर वह आया है ताकि उनके आत्मविश्वास की रक्षा विक्रम कर सकें । उसने कहा कि सूर्य देवता को घमण्ड है कि समुद्र देवता को छोड़कर पूरे ब्रह्माण्ड में कोई भी उनकी गर्मी को सहन नहीं कर सकता ।

देवराज इन्द्र उनकी इस बात से सहमत नहीं हैं । उनका मानना है कि उनकी अनुकम्पा प्राप्त मृत्युलोक का एक राजा सूर्य की गर्मी की परवाह न करके उनके निकट जा सकता है । वह राजा आप हैं । राजा विक्रमादित्य को अब सारी बात समझ में आ गई । उन्होंने सोच लिया कि प्राणोत्सर्ग करके भी सूर्य भगवान को समीप से जाकर नमस्कार करेंगे तथा देवराज के आत्मविश्वास की रक्षा करेंगे । उन्होंने ब्राह्मण को समुचित दान-दक्षिणा देकर विदा किया तथा अपनी योजना को कार्य-रूप देने का उपाय सोचने लगे । उन्हें इस बात की खुशी थी कि देवतागण भी उन्हें योग्य समझते हैं । भोर होने पर दूसरे दिन वे अपना राज्य छोड़कर चल पड़े । एकान्त में उन्होंने माँ काली द्वारा प्रदत्त दोनों बेतालों का स्मरण किया । दोनों बेताल तत्क्षण उपस्थित हो गए ।

विक्रम को उन्होंने बताया कि उन्हें उस खम्भे के बारे में सब कुछ पता है । दोनों बेताल उन्हें मानसरोवर के तट पर लाए । रात उन्होंने हरियाली से भरी जगह पर काटी और भोर होते ही उस जगह पर नज़र टिका दी जहाँ से खम्भा प्रकट होता । सूर्य की किरणों ने ज्योंहि मानसरोवर के जल को छुआ कि एक खम्भा प्रकट हुआ । विक्रम तुरन्त तैरकर उस खम्भे तक पहुँचे । खम्भे पर ज्योंहि विक्रम चढ़े जल में हलचल हुई और लहरें उठकर विक्रम के पाँव छूने लगीं । ज्यों-ज्यों सूर्य की गर्मी बढ़ी, खम्भा बढ़ता रहा । दोपहर आते-आते खम्भा सूर्य के बिल्कुल करीब आ गया । तब तक विक्रम का शरीर जलकर बिल्कुल राख हो गया था । सूर्य भगवान ने जब खम्भे पर एक मानव को जला हुआ पाया तो उन्हें समझते देर नहीं लगी कि विक्रम को छोड़कर कोई दूसरा नहीं होगा । उन्होंने भगवान इन्द्र के दावे को बिल्कुल सच पाया ।

उन्होंने अमृत की बून्दों से विक्रम को जीवित किया तथा अपने स्वर्ण कुण्डल उतारकर उन्हें भेंट कर दिए । उन कुण्डलों की विशेषता थी कि कोई भी इच्छित वस्तु वे कभी भी प्रदान कर देते । सूर्य देव ने अपना रथ अस्ताचल की दिशा में बढ़ाया तो खम्भा घटने लगा । सूर्यास्त होते ही खम्भा पूरी तरह घट गया और विक्रम जल पर तैरने लगे । तैरकर सरोवर के किनारे आए और दोनों बेतालों का स्मरण किया । बेताल उन्हें फिर उसी जगह लाए जहाँ से उन्हें सरोवर ले गए थे । विक्रम पैदल अपने महल की दिशा में चल पड़े । कुछ ही दूर पर एक ब्राह्मण मिला जिसने उनसे वे कुण्डल मांग लिए । विक्रम ने बेहिचक उसे दोनों कुण्डल दे दिए । उन्हें बिल्कुल मलाल नहीं हुआ ।

## पांचवी पुतली लीलावती

एक बार दो आदमी आपस में झगड़ रहे थे । एक कहता था कि तकदीर बड़ी है, दूसरा कहता था कि पुरुषार्थ बड़ा है । जब किसी तरह मामला न निबटा तो वे इन्द्र के पास गये । इन्द्र ने उन्हें विक्रमादित्य के पास भेज दिया । राजा ने उनकी बात सुनी और कहा कि छः महीने बाद आना । इसके बाद राजा ने किया क्या कि भेस बदलकर स्वयं यह देखने निकल पड़ा कि तकदीर और पुरुषार्थ में कौन बड़ा हैं ।

घूमते-घूमते उसे एक नगर मिला । विक्रमादित्य उस नगर के राजा के पास पहुंचा और एक लाख रूपये रोज पर उसके यहां नौकर हो गया । उसने वचन दिया कि जो काम और कोई नहीं कर सकेगा, उसे वह करेगा, उसे वह करेगा । एक बार की बात है कि उस नगर की राजा बहुत-सा सामान जहाज पर लादकर किसी देश को गया । विक्रमादित्य साथ में था । अचानक बड़े जोर का तूफान आया । राजा ने लंगर डलवाकर जहाज खड़ा कर दिया । जब तुफान थम गया तो राजा ने लंगर उठाने को कहा, लेकिन लंगर उठा ही नहीं । इस पर राजा ने विक्रमादित्य से कहा, “अब तुम्हारी बारी है ।” विक्रमादित्य नीचे उतरकर गया और भाग्य की बात कि उसके हाथ लगाते ही लंगर उठ गया, लेकिन उसके चढ़ने से पहले ही जहाज पानी और हवा की तेजी से चल पड़ा ।

विक्रमादित्य बहुते-बहुते किनारे लगा । उसे एक नगर दिखाई दिया । ज्योहीं वह नगर में घुसा, देखता क्या है, चौखट पर लिखा है कि यहां की राजकुमारी सिंहवती का विवाह विक्रमादित्य के साथ होगा । राजा को बड़ा अचरज हुआ । वह महल में गया । अंदर सिंहवती पलंग पर सो रही थी । विक्रमादित्य वहीं बैठ गया । उसने उसे जगाया । वह उठ बैठी और विक्रमादित्य का हाथ पकड़कर दोनों सिंहासन पर जा बैठे ।

उन्हें वहां रहते-रहते काफी दिन बीत गये । एक दिन विक्रमादित्य को अपने नगर लौटने के विचार आया और अस्तबल में से एक तेज घोड़ी लेकर रवाना हो गया । वह अवन्ती नगर पहुंचा । वहां नदी के किनारे एक साधु बैठा था । उसने राजा को फूलों की एक माला दी और कहा, “इसे पहनकर तुम जहां जाओंगे, तुम्हें फतह मिलेगी । दूसरे, इसे पहनकर तुम सबको देख सकोगे, तुम्हें कोई भी नहीं देख सकेगा ।” उसने एक छड़ी भी दी । उसमें यह गुण था कि रात को सोने से पहले जो भी जड़ाऊ गहना उससे मांगा जाता, वही मिल जाता ।

दोनों चीजों को लेकर राजा उज्जैन के पास पहुंचा । वहां उसे एक ब्राह्मण और एक भाट मिले । उन्होंने राजा से कहा, “हे राजन्! हम इतने दिनों से तुम्हारे द्वार पर सेवा कर रहे हैं, फिर भी हमें कुछ नहीं मिला ।” यह सुनकर राजा ने ब्राह्मण को छड़ी दे दी और भाट को माला । उनके गुण भी उन्हें बता दिये । इसके बाद राजा अपने महल में चला गया ।

छः महीने बीत चुके थे । सो वही दोनों आदमी आये, जिनमें पुरुषार्थ और भाग्य को लेकर झागड़ा हो रहा था । राजा ने उनकी बात का जवाब देते हुए कहा, “सुनो भाई, दुनिया में पुरुषार्थ के बिना कुछ नहीं हो सकता । लेकिन भाग्य भी बड़ा बली है ।” दोनों की बात रह गई । वे खुशी-खुशी अपने अपने घर चले गये ।

इतना कहकर पुतली बोली, “हे राजन् ! तुम विक्रमादित्य जैसे तो सिंहासन पर बैठों ।”

उस दिन का, मुहूर्त भी निकल गया । अगले दिन राजा सिंहासन की ओर बढ़ा तो कामकंदला नाम की छठी पुतली ने उसे रोक लिया । बोली, ” पहले मेरी बात सुनो ।”

## छठी पुतली रविभामा

छठी पुतली रविभामा ने जो कथा सुनाई वह इस प्रकार है-

एक दिन विक्रमादित्य नदी के तट पर बने हुए अपने महल से प्राकृतिक सौन्दर्य को निहार रहे थे । बरसात का महीना था, इसलिए नदी उफन रही थी और अत्यन्त तेज़ी से बह रही थी । इतने में उनकी नज़र एक पुरुष, एक सी और एक बच्चे पर पड़ी । उनके बस तार-तार थे और चेहरे पीले । राजा देखते ही समझ गए ये बहुत ही निर्धन हैं । सहसा वे तीनों उस नदी में छलांग लगा गए । अगले ही पल प्राणों की रक्षा के लिए चिल्लाने लगे । विक्रम ने बिना एक पल गँवाए नदी में उनकी रक्षा के लिए छलांग लगा दी । अकेले तीनों को बचाना सम्भव नहीं था, इसलिए उन्होंने दोनों बेतालों का स्मरण किया । दोनों बेतालों ने सी और बच्चे को तथा विक्रम ने उस पुरुष को डूबने से बचा लिया । तट पर पहुँचकर उन्होंने जानना चाहा वे आत्महत्या क्यों कर रहे थे । पुरुष ने बताया कि वह उन्हीं के राज्य का एक अत्यन्त निरधन ब्राह्मण है जो अपनी दरिद्रता से तंग आकर जान देना चाहता है । वह अपनी बीवी तथा बच्चे को भूख से मरता हुआ नहीं देख सकता और आत्महत्या के सिवा अपनी समस्या का कोई अन्त नहीं नज़र आता ।

इस राज्य के लोग इतने आत्मनिर्भर हैं कि सारा काम खुद ही करते हैं, इसलिए उसे कोई रोज़गार भी नहीं देता । विक्रम ने ब्राह्मण से कहा कि वह उनके अतिथिशाला में जब तक चाहे अपने परिवार के साथ रह सकता है तथा उसकी हर ज़रूरत पूरी की जाएगी । ब्राह्मण ने कहा कि रहने में तो कोई हर्ज नहीं है, लेकिन उसे डर है कि कुछ समय बाद आतिथ्य में कमी आ जाएगी और उसे अपमानित होकर जाना पड़ेगा । विक्रम ने उसे विश्वास दिलाया कि ऐसी कोई बात नहीं होगी और उसे भगवान समझकर उसके साथ हमेशा अच्छा बर्ताव किया जाएगा । विक्रम के इस तरह विश्वास दिलाने पर ब्राह्मण परिवार अतिथिशाला में आकर रहने लगा । उसकी देख-रेख के लिए नौकर-चाकर नियुक्त कर दिए गए । वे मौज से रहते, अपनी मर्जी से खाते-पीते और आरामदेह पलंग पर सोते । किसी चीज़ की उन्हें कमी नहीं थी । लेकिन वे सफाई पर बिल्कुल ध्यान नहीं देते । जो कपड़े पहनते थे उन्हें कई दिनों तक नहीं बदलते । जहाँ सोते वहीं थूकते और मल-मूत्र त्याग भी कर देते । चारों तरफ गंदगी-ही गंदगी फैल गई ।

दुर्गन्ध के मारे उनका स्थान एक पल भी ठहरने लायक नहीं रहा । नौकर-चाकर कुछ दिनों तक तो धीरज से सब कुछ सहते रहे लेकिन कब तक ऐसा चलता? राजा के कोप की भी उन्होंने पहवाह नहीं की और भाग खड़े हुए । राजा ने कई अन्य नौकर भेजे, पर सब के सब एक ही जैसे निकले । सबके लिए यह काम असंभव साबित हुआ । तब विक्रम ने खुद ही उनकी सेवा का बीड़ा उठाया । उठते-बैठते, सोते-जगते वे ब्राह्मण परिवार की हर इच्छा पूरी करते । दुर्गन्ध के मारे माथा फटा जाता, फिर भी कभी अपशब्द का व्यवहार नहीं करते । उनके कहने पर विक्रम उनके पाँव भी दबाते । ब्राह्मण परिवार ने हर सम्भव प्रयत्न किया कि विक्रम उनके आतिथ्य से तंग आकर अतिथि-सत्कार भूल जाएँ और अभद्रता से पेश आएँ, मगर उनकी कोशिश असफल रही । बड़े सब्र से विक्रम उनकी सेवा में लगे रहे । कभी उन्हें शिकायत का कोई मौका

नहीं दिया । एक दिन ब्राह्मण ने जैसे उनकी परीक्षा लेने की ठान ली । उसने राजा को कहा कि वे उसके शरीर पर लगी विष्टा साफ करें तथा उसे अच्छी तरह नहला-धोकर साफ़ वस्त्र पहनाएँ ।

विक्रम तुरन्त उसकी आज्ञा मानकर अपने हाथों से विष्टा साफ करने को बढ़े । अचानक चमत्कार हुआ । ब्राह्मण के सारे गंदे वस्त्र गायब हो गए । उसके शरीर पर देवताओं द्वारा पहने जाने वाले वस्त्र आ गए । उसका मुख मण्डल तेज से प्रदीप्त हो गया । सारे शरीर से सुगन्ध निकलने लगी । विक्रम आश्वर्य चकित थे । तभी वह ब्राह्मण बोला कि दरअसल वह वरुण है । वरुण देव ने उनकी परीक्षा लेने के लिए यह रूप धरा था । विक्रम के अतिथि-सत्कार की प्रशंसा सुनकर वे सपरिवार यहाँ आओ थे । जैसा उन्होंने सुना था वैसा ही उन्होंने पाया, इसलिए विक्रम को उन्होंने वरदान दिया कि उसके राज्य में कभी भी अनावृष्टि नहीं होगी तथा वहाँ की ज़मीन से तीन-तीन फसलें निकलेंगी । विक्रम को वरदान देकर वे सपरिवार अन्तर्ध्यान हो गए ।

## सातवी पुतली कौमुदी

सातवीं पुतली कौमुदी ने जो कथा कही वह इस प्रकार है- एक दिन राजा विक्रमादित्य अपने शयन-कक्ष में सो रहे थे । अचानक उनकी नींद करुण-क्रन्दन सुनकर टूट गई । उन्होंने ध्यान लगाकर सुना तो रोने की आवाज नदी की तरफ से आ रही थी और कोई सी रोए जा रही थी । विक्रम की समझ में नहीं आया कि कौन सा दुख उनके राज्य में किसी सी को इतनी रात गए बिलख-बिलख कर रोने को विवश कर रहा है । उन्होंने तुरन्त राजपरिधान पहना और कमर में तलवार लटका कर आवाज़ की दिशा में चल पड़े । क्षिप्रा के तट पर आकर उन्हें पता चला कि वह आवाज़ नदी के दूसरे किनारे पर बसे जंगल से आ रही है । उन्होंने तुरन्त नदी में छलांग लगा दी तथा तैरकर दूसरे किनारे पर पहुँचे । फिर चलते-चलते उस जगह पहुँचे जहाँ से रोने की आवाज़ आ रही थी । उन्होंने देखा कि झाड़ियों में बैठी एक सी रो रही है ।

उन्होंने उस सी से रोने का कारण पूछा । सी ने कहा कि वह कई लोगों को अपनी व्यथा सुना चुकी है, मगर कोई फायदा नहीं हुआ । राजा ने उसे विश्वास दिलाया कि वे उसकी मदद करने का हर संभव प्रयत्न करेंगे । तब सी ने बताया कि वह एक चोर की पत्नी है और पकड़े जाने पर नगर कोतवाल ने उसे वृक्ष पर उलटा टँगवा दिया है । राजा ने पूछा क्या वह इस फैसले से खुश नहीं है । इस पर औरत ने कहा कि उसे फैसले पर कोई आपत्ति नहीं है, लेकिन वह अपने पति को भूखा-प्यासा लटकता नहीं देख सकती । चूँकि न्याय में इस बात की चर्चा नहीं कि वह भूखा-प्यासा रहे, इसलिए वह उसे भोजन तथा पानी देना चाहती है ।

विक्रम ने पूछा कि अब तक उसने ऐसा किया क्यों नहीं । इस पर औरत बोली कि उसका पति इतनी ऊँचाई पर टँगा हुआ है कि वह बगैर किसी की सहायता के उस तक नहीं पहुँच सकती और राजा के डर से कोई भी दण्डित व्यक्ति की मदद को तैयार नहीं होता । तब विक्रम ने कहा कि वह उनके साथ चल सकती है । दरअसल वह औरत पिशाचिनी की और वह लटकने वाला व्यक्ति उसका पति नहीं था । वह उसे राजा के कन्धे पर चढ़कर खाना चाहती थी । जब विक्रम उस पेड़ के पास आए तो वह उस व्यक्ति को चट कर गई । तृप्त होकर विक्रम को उसने मनचाही चीज़ मांगने को कहा । विक्रम ने कहा वह अन्नपूर्णा प्रदान करे जिससे उनकी प्रजा कभी भूखी नहीं रहे । इस पर वह पिशाचिनी बोली कि अन्नपूर्णा देना उसके बस में नहीं, लेकिन उसकी बहन प्रदान कर सकती है । विक्रम उसके साथ चलकर नदी किनारे आए जहाँ एक झोपड़ी थी ।

पिशाचिनी के आवाज़ देने पर उसकी बहन बाहर निकली । बहन को उसने राजा का परिचय दिया और कहा कि विक्रमादित्य अन्नपूर्णा के सच्चे अधिकारी है, अतः वह उन्हें अन्नपूर्णा प्रदान करे । उसकी बहन ने सहर्ष अन्नपूर्णा उन्हें दे दी । अन्नपूर्णा लेकर विक्रम अपने महल की ओर रवाना हुए । तब तक भोर हो चुकी थी । रास्ते में एक ब्राह्मण मिला । उसने राजा से भिक्षा में भोजन माँगा । विक्रम ने अन्नपूर्णा पात्र से कहा कि ब्राह्मण को पेट भर भोजन कराए । सचमुच तरह-तरह के व्यंजन ब्राह्मण कि सामने आ गए । जब ब्राह्मण ने पेट भर खाना खा लिया तो राजा ने उसे दक्षिणा देना चाहा । ब्राह्मण

अपनी आँखों से अन्नपूर्णा पात्र का चमत्कार देख चुका था, इसलिए उसने कहा- “अगर आप दक्षिणा देना ही चाहते हैं तो मुझे दक्षिणास्वरूप यह पात्र दे दें, ताकि मुझे किसी के सामने भोजन के लिए हाथ नहीं फैलाना पड़े ।” विक्रम ने बेहिचक उसी क्षण उसे वह पात्र दे दिया । ब्राह्मण राजा को आशीर्वाद देकर चला गया और वे अपने महल लौट गए ।

## आठवी पुतली पुष्पवती

एक दिन राजा विक्रमादित्य के दरबार में एक बढ़ई आया । उसने राजा को काठ का, एक घोड़ा दिखाया और कहा कि यह ने कुछ खाता है, न पीता है और जहां चाहों, वहां ले जाता है । राजा ने उसी समय दीवान को बुलाकर एक लाख रुपया उसे देने को कहा ।, “यह तो काठ का है और इतने दाम का नहीं है ।” राजा ने चिढ़कर कहां, “दो लाख रुपये दो ।” दीवान चुप रह गया । रुपये दें दिये । रुपये लेकर बढ़ई चलता बना, पर चलते चलते कह गया कि इस घोड़े में ऐड़ लगाना कोड़ा मत मारना ।

एक दिन राजा ने उस पर सवारी की । पर वह बढ़ई की बात भूल गया । और उसने घोड़े पर कोड़ा जमा दिया । कोड़ा लगाना था कि घोड़ा हवा से बातें करने लगा और समुद्र पार ले जाकर उसे जंगल में एक पेड़ पर गिरा दिया । लुढ़कता हुआ राजा नीचे गिरा मुर्दा जैसा हो गया । संभलने पर उठा और चलते-चलते एक ऐसे बीहड़ वन में पहुंचा कि निकलना मुश्किल हो गया । जैसे-तैसे वह वहां से निकला । दस दिन में सात कोस चलकर वह ऐसे घने जंगल में पहुंचा, जहां हाथ तक नहीं सूझता था । चारों तरफ शेर-चीते दहाड़ते थे । राजा घबराया । उसे रास्ता नहीं सूझता था । आखिर पंद्रह दिन भटकने के बाद एक ऐसी जगह पहुंचा जहां एक मकान था । और उसके बाहर एक ऊंचा पेड़ और दो कुएं थे । पेड़ पर एक बंदरियां थीं । वह कभी नीचे आती तो कभी ऊपर चढ़ती ।

राजा पेड़ पर चढ़ गया और छिपकर सब हाल देखने लगा । दोपहर होने पर एक यती वहां आया । उसने बाईं तरफ के कुएं से एक चुल्लू पानी लिया और उस बंदरिया पर छिड़क दिया । वह तुरन्त एक बड़ी ही सुन्दर स्त्री बन गई । यती पहरभर उसके साथ रहा, फिर दूसरे कुएं से पानी खींचकर उस पर डाला कि वह फिर बंदरिया बन गई । वह पेड़ पर जा चढ़ी और यती गुफा में चला गया ।

राजा को यह देखकर बड़ा अचंभा हुआ । यती के जाने पर उसने भी ऐसा ही किया । पानी पड़ते ही बंदरियां सुन्दर स्त्री बन गईं । राजा ने जब प्रेम से उसकी ओर देखा तो वह बोली, “हमारी तरफ ऐसे मत देखो । हम तपस्वी हैं । शाप दे देंगे तो तुम भस्म हो जाओंगे ।”

राजा बोला, ”मेरा नाम विक्रमादित्य है । मेरा कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता है ।”

राजा का नाम सुनते वह उनके चरणों में गिर पड़ी बोली, “हे महाराज ! तुम अभी यहां से चले जाओं, नहीं तो यती आयगा और हम दोनों को शाप देकर भस्म कर देगा ।”

राजा ने पूछा, “तुम कौन हो और इस यती के हाथ कैसे पड़ीं?”

वह बोली, “मेरा बाप कामदेव और माँ पुष्पावती हैं। जब मैं बारह बरस की हुई तो मेरे माँ-बाप ने मुझे एक काम करने को कहा। मैंने उसे नहीं किया। इसपर उन्होंने गुस्सा होकर मुझे इस यती को दे डाला। वह मुझे यहां ले आया। और बंदरियां बनाकर रखा है। सच है, भाग्य के लिखे को कोई नहीं मेट सकता।”

राजा ने कहा, “मैं तुम्हें साथ ले चलूँगा।” इतना कहकर उसने दूसरे कुएं का, पानी छिड़ककर उसे फिर बंदरिया बना दिया।

अगले दिन वह यती आया। जब उसने बंदरिया को स्त्री बना लिया तो वह बोली, “मुझे कुछ प्रसाद दो।”

यती ने एक कमल का फूल दिया और कहा, ”यह कभी कुम्हलायगा नहीं और रोज एक लाल देगा। इसे संभालकर रखना।”

यती के जाने पर राजा ने बंदरिया को स्त्री बना लिया। फिर अपने वीरों को बुलाया। वे आये और तरक्त पर बिठाकर उन दोनों को ले चले। जब वे शहर के पास आये तो देखते क्या हैं कि एक बड़ा सुन्दर लड़का खेल रहा है। अपने घर चला गया। राजा स्त्री को साथ लेकर अपने महल में आ गये।

अगले दिन कमल में एक लाल निकला। इस तरह हर दिन निकलते-निकलते बहुत से लाल इकट्ठे हो गये। एक दिन लड़के का बाप उन्हें बाजार में बेचने गया। तो कोतवाल ने उसे पकड़ लिया। राजा के पास ले गया। लड़के के बाप ने राजा को सब हाल ठीक-ठीक कह सुनाया। सुनकर राजा को कोतवाल पर बड़ा गुस्सा आया और उसने हुक्म दिया कि वह उसे बेकसूर आदमी को एक लाख रुपया दे।

इतना कहकर पुतली बोली, “हे राजन्! जो विक्रमादित्य जैसा दानी और न्यायी हो, वहीं इस सिंहासन पर बैठ सकता है।”

राजा झुङ्गलाकर चूप रह गया। अगले दिन वह पक्का करके सिंहासन की तरफ बढ़ा कि मधुमालती नाम की नंवी पुतली ने उसका रास्ता रोक लिया। बोली, “हे राजन्! पहले मेरी बात सुनो।”

## नौवी पुतली मधुमालती

नवीं पुतली मधुमालती ने जो कथा सुनाई उससे विक्रमादित्य की प्रजा के हित में प्राणोत्सर्ग करने की भावना झलकती है । कथा इस प्रकार है- एक बार राजा विक्रमादित्य ने राज्य और प्रजा की सुख-समृद्धि के लिए एक विशाल यज्ञ का आयोजन किया । कई दिनों तक यज्ञ चलता रहा । एक दिन राजा मंत्र-पाठ कर रहे, तभी एक ऋषि वहाँ पधारे । राजा ने उन्हें देखा, पर यज्ञ छोड़कर उठना असम्भव था । उन्होंने मन ही मन ऋषि का अभिवादन किया तथा उन्हें प्रणाम किया । ऋषि ने भी राज्य का अभिप्राय समझकर उन्हें आशीर्वाद दिया । जब राजा यज्ञ से उठे, तो उन्होंने ऋषि से आने का प्रयोजन पूछा । राजा को मालूम था कि नगर से बाहर कुछ ही दूर पर वन में ऋषि एक गुरुकुल चलाते हैं जहाँ बच्चे विद्या प्राप्त करने जाते हैं ।

ऋषि ने जवाब दिया कि यज्ञ के पुनीत अवसर पर वे राजा को कोई असुविधा नहीं देते, अगर आठ से बारह साल तक के छः बच्चों के जीवन का प्रश्न नहीं होता । राजा ने उनसे सब कुछ विस्तार से बताने को कहा । इस पर ऋषि ने बताया कि कुछ बच्चे आश्रम के लिए सूखी लकड़ियाँ बीनने वन में इधर-उधर घूम रहे थे । तभी दो राक्षस आए और उन्हें पकड़कर ऊँची पहाड़ी पर ले गए । ऋषि को जब वे उपस्थित नहीं मिले तो उनकी तलाश में वे वन में बेचैनी से भटकने लगे । तभी पहाड़ी के ऊपर से गर्जना जैसी आवाज सुनाई पड़ी जो निश्चित ही उनमें से एक राक्षस की थी । राक्षस ने कहा कि उन बच्चों की जान के बदले उन्हें एक पुरुष की आवश्यकता है जिसकी वे माँ काली के सामने बलि देंगे ।

जब ऋषि ने बलि के हेतु अपने-आपको उनके हवाले करना चाहा तो उन्होंने असहमति जताई । उन्होंने कहा कि ऋषि बूढ़े हैं और काली माँ ऐसे कमज़ोर बूढ़े की बलि से प्रसन्न नहीं होगी । काली माँ की बलि के लिए अत्यन्त स्वस्थ क्षत्रिय की आवश्यकता है । राक्षसों ने कहा है कि अगर कोई छल या बल से उन बच्चों को स्वतंत्र कराने की चेष्टा करेगा, तो उन बच्चों को पहाड़ी से लुढ़का कर मार दिया जाएगा । राजा विक्रमादित्य से ऋषि की परेशानी नहीं देखी जा रही थी । वे तुरन्त तैयार हुए और ऋषि से बोले- “आप मुझे उस पहाड़ी तक ले चले । मैं अपने आपको काली के सम्मुख बलि के लिए प्रस्तुत करूँगा । मैं स्वस्थ हूँ और क्षत्रिय भी । राक्षसों को कोई आपत्ति नहीं होगी ।” ऋषि ने सुना तो हत्प्रभ रह गाए । उन्होंने लाख मनाना चाहा, पर विक्रम ने अपना फैसला नहीं बदला । उन्होंने कहा आगर राजा के जीवित रहते उसके राज्य की प्रजा पर कोई विपत्ति आती है तो राजा को अपने प्राण देकर भी उस विपत्ति को दूर करना चाहिए ।

राजा ऋषि को साथ लेकर उस पहाड़ी तक पहुँचे । पहाड़ी के नीचे उन्होंने अपना घोड़ा छोड़ दिया तथा पैदल ही पहाड़ पर चढ़ने लगे । पहाड़ीवाला रास्ता बहुत ही कठिन था, पर उन्होंने कठिनाई की परवाह नहीं की । वे चलते-चलते पहाड़ की चोटी पर पहुँचे । उनके पहुँचते ही एक राक्षस बोला कि वह उन्हें पहचानता है और पूछने लगा कि उन्हें बच्चों की रिहाई की शर्त मालूम है कि नहीं । उन्होंने कहा कि वे सब कुछ जानने के बाद ही यहाँ आए हैं तथा उन्होंने राक्षसों से बच्चों को छोड़ देने को कहा । एक राक्षस बच्चों को अपनी बाँहों में लेकर उड़ा और नीचे उन्हें सुरक्षित पहुँचा आया । दूसरा राक्षस

उन्हें लेकर उस जगह आया जहाँ माँ काली की प्रतिमा थी और बलिवेदी बनी हुई थी विक्रमादित्य ने बलिवेदी पर अपना सर बलि के हेतु झूका दिया ।

वे ज़रा भी विचलित नहीं हुए । उन्होंने मन ही मन अन्तिम बार समझ कर भगवान का स्मरण किया और वह राक्षस खड़ग लेकर उनका सर धर से अलग करने को तैयार हुआ । अचानक उस राक्षस ने खड़ग फेक दिया और विक्रम को गले लगा लिया । वह जगह एकाएक अद्भुत रोशनी तथा खुशबू से भर गया । विक्रम ने देखा कि दोनों राक्षसों की जगह इन्द्र तथा पवन देवता खड़े थे । उन दोनों ने उनकी परीक्षा लेने के लिए यह सब किया था वे देखना चाहते थे कि विक्रम सिर्फ सांसारिक चीज़ों का दान ही कर सकता है या प्राणोत्सर्ग करने की भी क्षमता रखता है । उन्होंने राजा से कहा कि उन्हें यज्ञ करता देख ही उनके मन में इस परीक्षा का भाव जन्मा था । उन्होंने विक्रम को यशस्वी होने का आशीर्वाद दिया तथा कहा कि उनकी कीर्कित चारों ओर फैलेगी ।

## दसवीं पुतली प्रभावती

दसवीं पुतली प्रभावती ने जो कथा सुनाई वह इस प्रकार है- एक बार राजा विक्रमादित्य शिकार खेलते-खेलते अपने सैनिकों की टोली से काफी आगे निकलकर जंगल में भटक गए । उन्होंने इधर-उधर काफी खोजा, पर उनके सैनिक उन्हें नज़र नहीं आए । उसी समय उन्होंने देखा कि एक सुदर्शन युवक एक पेड़ पर चढ़ा और एक शाखा से उसने एक रस्सी बाँधी । रस्सी में फंदा बना था उस फन्दे में अपना सर डालकर झूल गया । विक्रम समझ गए कि युवक आत्महत्या कर रहा है । उन्होंने युवक को नीचे से सहारा देकर फंदा उसके गले से निकाला तथा उसे डाँटा कि आत्महत्या न सिर्फ पाप और कायरता है, बल्कि अपराध भी है । इस अपराध के लिए राजा होने के नाते वे उसे दण्डित भी कर सकते हैं । युवक उनकी रोबीली आवाज़ तथा वेशभूषा से ही समझ गया कि वे राजा हैं, इसलिए भयभीत हो गया ।

राजा ने उसकी गर्दन सहलाते हुए कहा कि वह एक स्वस्थ और बलशाली युवक है फिर जीवन से निराश क्यों हो गया । अपनी मेहनत के बल पर वह आजीविका की तलाश कर सकता है । उस युवक ने उन्हें बताया कि उसकी निराशा का कारण जीविकोपार्जन नहीं है और वह विपन्नता से निराश होकर आत्महत्या का प्रयास नहीं कर रहा था । राजा ने जानना चाहा कि कौन सी ऐसी विवशता है जो उसे आत्महत्या के लिए प्रेरित कर रही है । उसने जो बताया वह इस प्रकार है- उसने कहा कि वह कालिं का रहने वाला है तथा उसका नाम वसु है । एक दिन वह जंगल से गुज़र रहा था कि उसकी नज़र एक अत्यन्त सुन्दर लड़की पर पड़ी । वह उसके रूप पर इतना मोहित हुआ कि उसने उससे उसी समय प्रणय निवेदन कर डाला ।

उसके प्रस्ताव पर लड़की हँस पड़ी और उसने उसे बताया कि वह किसी से प्रेम नहीं कर सकती क्योंकि उसके भाग्य में यही बदा है । दरअसल वह एक अभागी राजकुमारी है जिसका जन्म ऐसे नक्षत्र में हुआ कि उसका पिता ही उसे कभी नहीं देख सकता अगर उसके पिता ने उसे देखा, तो तत्क्षण उसकी मृत्यु हो जाएगी । उसके जन्मते ही उसके पिता ने नगर से दूर एक सन्यासी की कुटिया में भेज दिया और उसका पालन पोषण उसी कुटिया में हुआ । उसका विवाह भी उसी युवक से संभव है जो असंभव को संभव करके दिखा दे । उस युवक को खौलते तेल के कड़ाह में कूदकर ज़िन्दा निकलकर दिखाना होगा ।

उसकी बात सुनकर वसु उस कुटिया में गया जहाँ उसके निवास था । वहाँ जाने पर उसने कई अस्थि पं देखे जो उस राजकुमारी से विवाह के प्रयास में खौलते कड़ाह के तेल में कूदकर अपनी जानों से हाथ धो बैठे थे । वसु की हिम्मत जवाब दे गई । वह निराश होकर वहाँ से लौट गया । उसने उसे भुलाने की लाख कोशिश की, पर उसका रूप सोते-जागते, उठते-बैठते- हर आँखों के सामने आ जाता है । उसकी नींद उड़ गई है । उसे खाना-पीना नहीं अच्छा लगता है । अब प्रणान्त कर लेने के सिवा उसके पास कोई चारा नहीं बचा है ।

विक्रम ने उसे समझाना चाहा कि उस राजकुमारी को पाना सचमुच असंभव है, इसलिए वह उसे भूलकर किसी और को जीवन संगिनी बना ले, लेकिन युवक नहीं माना। उसने कहा कि विक्रम ने उसे व्यर्थ ही बचाया। उन्होंने उसे मर जाने दिया होता, तो अच्छा होता। विक्रम ने उससे कहा कि आत्महत्या पाप है, और यह पाप अपने सामने वह नहीं होता देख सकते थे। उन्होंने उसे वचन दिया कि वे राजकुमारी से उसका विवाह कराने का हर सम्भव प्रयास करेंगे। फिर उन्होंने माँ काली द्वारा प्रदत्त दोनों बेतालों का स्मरण किया। दोनों बेताल पलक झापकते ही उपस्थित हुए तथा कुछ ही देर में उन दोनों को लेकर उस कुटिया में आए जहाँ राजकुमारी रहती थी। वह बस कहने को कुटिया थी। राजकुमारी की सारी सुविधाओं का ख्याल रखा गया था। नौकर-चाकर थे।

राजकुमारी का मन लगाने के लिए सखी-सहेलियाँ थीं। तपस्वी से मिलकर विक्रमादित्य ने वसु के लिए राजकुमारी का हाथ मांगा। तपस्वी ने राजा विक्रमादित्य का परिचय पाकर कहा कि अपने प्राण वह राजा को सरलता से अर्पित कर सकता है, पर राजकुमारी का हाथ उसी युवक को देगा जो खौलते तेल से सकुशल निकल आए, तो किसी अन्य के लिए राजकुमारी का हाथ मांग सकता है या नहीं। इस पर तपस्वी ने कहा कि बस यह शर्त पूरी होनी चाहिए। वह अपने लिए हाथ मांग रहा है या किसी अन्य के लिए, यह बात मायने नहीं रखती है। उसने राजा को विश्वास दिलाने की कोशिश की कि इस राजकुमारी को कुँआरी ही रहना पड़ेगा। जब विक्रम ने उसे बताया कि वे खुद ही इस युवक के हेतु कड़ाह में कूदने को तैयार हैं तो तपस्वी का मुँह विस्मय से खुला रहा गया। वे बात ही कर रहे थे कि राजकुमारी अपनी सहेलियों के साथ वहाँ आई। वह सचमुच अप्सराओं से भी ज़्यादा सुन्दर थी। अगर युवकों ने खौलते कड़ाह में कूदकर प्राण गँवाए, तो कोई गलत काम नहीं किया।

विक्रम ने तपस्वी से कहकर कड़ाह भर तेल की व्यवस्था करवाई। जब तेल एकदम खौलने लगा, तो माँ काली को स्मरण कर विक्रम तेल में कूद गए। खौलते तेल में कूदते ही उनके प्राण निकल गए और शरीर भुनकर स्याह हो गया। माँ काली को उन पर दया आ गई और उन्होंने बेतालों को विक्रम को जीवित करने की आज्ञा दी। बेतालों ने अमृत की बून्दें उनके मुँह में डालकर उन्हें ज़िन्दा कर दिया। जीवित होते ही उन्होंने वसु के लिए राजकुमारी का हाथ मांगा। राजकुमारी के पिता को खबर भेज दी गई और दोनों का विवाह धूम-धाम से सम्पन्न हुआ।

## ग्यारहवीं पुतली लिलोचना

ग्यारहवीं पुतली लिलोचनी जो कथा कही वह इस प्रकार है- राजा विक्रमादित्य बहुत बड़े प्रजापालक थे । उन्हें हमेंशा अपनी प्रजा की सुख-समृद्धि की ही चिन्ता सताती रहती थी । एक बार उन्होंने एक महायज्ञ करने की ठानी । असंख्य राजा-महाराजाओं, पण्डितों और ऋषियों को आमन्त्रित किया । यहाँ तक कि देवताओं को भी उन्होंने नहीं छोड़ा ।

पवन देवता को उन्होंने खुद निमन्त्रण देने का मन बनाया तथा समुद्र देवता को आमन्त्रित करने का काम एक योग्य ब्राह्मण को सौंपा । दोनों अपने काम से विदा हुए । जब विक्रम वन में पहुँचे तो उन्होंने तय करना शुरू किया ताकि पवन देव का पता-ठिकाना ज्ञात हो । योग-साधना से पता चला कि पवन देव आजकल सुमेरु पर्वत पर वास करते हैं । उन्होंने सोचा अगर सुमेरु पर्वत पर पवन देवता का आह्वान किया जाए तो उनके दर्शन हो सकते हैं । उन्होंने दोनों बेतालों का स्मरण किया तो वे उपस्थित हो गए । उन्होंने उन्हें अपना उद्देश्य बताया । बेतालों ने उन्हें आनन-फानन में सुमेरु पर्वत की चोटी पर पहुँचा दिया । चोटी पर इतना तेज हवा थी कि पाँव जमाना मुश्किल था ।

बड़े-बड़े वृक्ष और चट्टान अपनी जगह से उड़कर दूर चले जा रहे थे । मगर विक्रम तनिक भी विचलित नहीं हुए । वे योग-साधना में सिद्धहस्त थे, इसलिए एक जगह अचल होकर बैठ गए । बाहरी दुनिया को भूलकर पवन देव की साधना में रत हो गए । न कुछ खाना, न पीना, सोना और आराम करना भूलकर साधना में लीन रहे । आखिरकार पवन देव ने सुधि ली । हवा का बहना बिल्कुल थम गया । मन्द-मन्द बहती हुई वायु शरीर की सारी थकान मिटाने लगी । आकाशवाणी हुई- “हे राजा विक्रमादित्य, तुम्हारी साधना से हम प्रसन्न हुए । अपनी इच्छा बता ।”

विक्रम अगले ही क्षण सामान्य अवस्था में आ गए और हाथ जोड़कर बोले कि वे अपने द्वारा किए जा रहे महायज्ञ में पवन देव की उपस्थिति चाहते हैं । पवन देव के पधारने से उनके यज्ञ की शोभा बढ़ेगी । यह बात विक्रम ने इतना भावुक होकर कहा कि पवन देव हँस पड़े । उन्होंने जवाब दिया कि सशरीर यज्ञ में उनकी उपस्थिति असंभव है । वे अगर सशरीर गए, तो विक्रम के राज्य में भयंकर आँधी-तूफान आ जाएगा । सारे लहलहाते खेत, पेड़-पौधे, महल और झोपड़ियाँ- सब की सब उजड़ जाएँगी । रही उनकी उपस्थिति की बात, तो संसार के हर कोने में उनका वास है, इसलिए वे अप्रत्यक्ष रूप से उस महायज्ञ में भी उपस्थित रहेंगे । विक्रम उनका अभिप्राय समझकर चुप हो गए । पवन देव ने उन्हें आशीर्वाद देते हुए कहा कि उनके राज्य में कभी अनावृष्टि नहीं होगी और कभी दुर्भिक्ष का सामना उनकी प्रजा नहीं करेगी । उसके बाद उन्होंने विक्रम को कामधेनु गाय देते हुए कहा कि इसकी कृपा से कभी भी विक्रम के राज्य में दूध की कमी नहीं होगी । जब पवनदेव लुप्त हो गए, तो विक्रमादित्य ने दोनों बेतालों का स्मरण किया और बेताल उन्हें लेकर उनके राज्य की सीमा तक आए ।

जिस ब्राह्मण को विक्रम ने समुद्र देवता को आमन्त्रित करने का भार सौंपा था, वह काफी कठिनाइयों को झेलता हुआ सागर तट पर पहुँचा । उसने कमर तक सागर में घुसकर समुद्र देवता का आद्वान किया । उसने बार-बार दोहराया कि महाराजा विक्रमादित्य महायज्ञ कर रहे हैं और वह उनका दूत बनकर उन्हें आमंत्रित करने आया है । अंत में समुद्र देवता असीम गहराई से निकलकर उसके सामने प्रकट हुए । उन्होंने ब्राह्मण से कहा कि उन्हें उस महायज्ञ के बारे में पवन देवता ने सब कुछ बता दिया है । वे पवन देव की तरह ही विक्रमादित्य के आमन्त्रण का स्वागत तो करते हैं, लेकिन सशरीर वहाँ सम्मिलित नहीं हो सकते हैं । ब्राह्मण ने समुद्र देवता से अपना आशय स्पष्ट करने का सादर निवेदन किया, तो वे बोले कि अगर वे यज्ञ में सम्मिलित होने गए तो उनके साथ अथाह जल भी जाएगा और उसके रास्ते में पड़नेवाली हर चीज़ डूब जाएगी । चारों ओर प्रलय-सी स्थिति पैदा हो जाएगी । सब कुछ नष्ट हो जाएगा ।

जब ब्राह्मण ने जानना चाहा कि उसके लिए उनका क्या आदेश हैं, तो समुद्र देवता बोले कि वे विक्रम को सकुशल महायज्ञ सम्पन्न कराने के लिए शुभकामनाएँ देते हैं । अप्रत्यक्ष रूप में यज्ञ में आद्योपति विक्रम उन्हें महसूस करेंगे, क्योंकि जल की एक-एक बून्द में उनका वास है । यज्ञ में जो जल प्रयुक्त होगा उसमें भी वे उपस्थित रहेंगे । उसके बाद उन्होंने ब्राह्मण को पाँच रत्न और एक घोड़ा देते हुए कहा- “मेरी ओर से राजा विक्रमादित्य को ये उपहार दे देना ।” ब्राह्मण घोड़ा और रत्न लेकर वापस चल पड़ा । उसको पैदल चलता देख वह घोड़ा मनुष्य की बोली में उससे बोला कि इस लंबे सफर के लिए वह उसकी पीठ पर सवार क्यों नहीं हो जाता ।

उसके ना-नुकुर करने पर घोड़े ने उसे समझाया कि वह राजा का दूत है, इसलिए उसके उपहार का उपयोग वह कर सकता है । ब्राह्मण जब राजी होकर बैठ गया तो वह घोड़ा पवन वेग से उसे विक्रम के दरबार ले आया । घोड़े की सवारी के दौरान उसके मन में इच्छा जगी- “काश ! यह घोड़ा मेरा होता !” जब विक्रम को उसने समुद्र देवता से अपनी बातचीत सविस्तार बताई और उन्हें उनके दिए हुए फुहार दिए, तो उन्होंने उसे पाँचों रत्न तथा घोड़ा उसे ही प्राप्त होने चाहिए, चूंकि रास्ते में आनेवाली सारी कठिनाइयाँ उसने राजा की खातिर हँसकर झेलीं । उनकी बात समुद्र देवता तक पहुँचाने के लिए उसने कठिन साधना की । ब्राह्मण रत्न और घोड़ा पाकर फूला नहीं समाया ।

## बारहवीं पुतली पद्मावती

बारहवीं पुतली पद्मावती ने जो कथा सुनाई वह इस प्रकार है- एक दिन रात के समय राजा विक्रमादित्य महल की छत पर बैठे थे । मौसम बहुत सुहाना था । पूनम का चाँद अपने यौवन पर था तथा सब कुछ इतना साफ़-साफ़ दिख रहा था, मानों दिन हो । प्रकृति की सुन्दरता में राजा एकदम खोए हुए थे । सहसा वे चौंक गए । किसी स्त्री की चीख थी । चीख की दिशा का अनुमान लगाया । लगातार कोई और चीख रही थी और सहायता के लिए पुकार रही थी । उस स्त्री को विपत्ति से छुटकारा दिलाने के लिए विक्रम ने ढाल-तलवार सम्भाली और अस्तबल से घोड़ा निकाला । घोड़े पर सवार हो फैरन उस दिशा में चल पड़े । कुछ ही समय बाद वे उस स्थान पर पहुँचे ।

उन्होंने देखा कि एक स्त्री “बचाओ बचाओ” कहती हुई बेतहाशा भागी जा रही है और एक विकराल दानव उसे पकड़ने के लिए उसका पीछा कर रहा है । विक्रम ने एक क्षण भी नहीं गँवाया और घोड़े से कूद पड़े । युवती उनके चरणों पर गिरती हुई बचाने की विनती करने लगी । उसकी बाँहें पकड़कर विक्रम ने उसे उठाया और उसे बहन सम्बोधित करके ढाढ़स बंधाने की कोशिश की । उन्होंने कहा कि वह राजा विक्रमादित्य की शरणागत है और उनके रहते उस पर कोई आँच नहीं आ सकती । जब वे उसे दिलासा दे रहे थे, तो राक्षस ने अटृहास लगाया । उसने विक्रम को कहा कि उन जैसा एक साधारण मानव उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकता तथा उन्हें वह कुछ ही क्षणों में पशु की भाँति चीड़ फाड़कर रख देगा । ऐसा बोलते हुए वह विक्रम की ओर लपका ।

विक्रम ने उसे चेतावनी देते हुए ललकारा । राक्षस ने उनकी चेतावनी का उपहास किया । उसे लग रहा था कि विक्रम को वह पल भर में मसल देगा । वह उनकी ओर बढ़ता रहा । विक्रम भी पूरे सावधान थे । वह ज्योंहि विक्रम को पकड़ने के लिए बढ़ा विक्रम ने अपने को बचाकर उस पर तलवार से वार किया । राक्षस भी अत्यन्त फुर्तीला था । उसने पैंतरा बदलकर खुद को बचा लिया और भिड़ गया । दोनों में घमासान युद्ध होने लगा । विक्रम ने इतनी फुर्ती और चतुराई से युद्ध किया कि राक्षस थकान से चूर हो गया तथा शिथिल पड़ गया । विक्रम ने अवसर का पूरा लाभ उठाया तथा अपनी तलवार से राक्षस का सर धड़ से अलग कर दिया । विक्रम ने समझा राक्षस का अन्त हो चुका है, मगर दूसरे ही पल उसका कटा सिर फिर अपनी जगह आ लगा और राक्षस दुगुने उत्साह से उठकर लड़ने लगा । इसके अलावा एक और समस्या हो गई ।

जहाँ उसका रक्त गिरा था वहाँ एक और राक्षस पैदा हो गया । राजा विक्रमादित्य क्षण भर को तो चकित हुए, किन्तु विचलित हुए बिना एक साथ दोनों राक्षसों का सामना करने लगे । रक्त से जन्मे राक्षस ने मौका देखकर उन पर धूंसे का प्रहार किया तो उन्होंने पैंतरा बदलकर पहले वार में उसकी भुजाएँ तथा दूसरे वार में उसकी टांगें काट डालीं । राक्षस असह्य पीड़ा से इतना चिल्लाया कि पूरा वन गूंज गया । उसे दर्द से तड़पता देखकर राक्षस का धैर्य जवाब दे गया और मौका पाकर वह सर पर पैर रखकर भागा । चूँकि उसने पीठ दिखाई थी, इसलिए विक्रम ने उसे मारना उचित नहीं समझा । उस राक्षस के भाग जाने के बाद विक्रम उस स्त्री के पास आए तो देखा कि वह भय के मारे काँप रही है । उन्होंने उससे कहा कि उसे निश्चिन्त हो जाना चाहिए और भय त्याग देना चाहिए, क्योंकि दानव भाग चुका है ।

उन्होंने उसे अपने साथ महल चलने को कहा ताकि उसे उसके माँ-बाप के पास पहुँचा दे । उस स्त्री ने जवाब दिया कि खतरा अभी टला नहीं है, क्योंकि राक्षस मरा नहीं । वह लौटकर आएगा और उसे ढूँढकर फिर इसी स्थान पर ले आएगा । जब विक्रम ने उसका परिचय जानना चाहा, तो वह बोली कि वह सिंहुल द्वीप की रहनेवाली है और एक ब्राह्मण की बेटी है । एक दिन वह तालाब में सखियों के साथ तालाब में नहा रही थी तभी राक्षस ने उसे देख लिया और मोहित हो गया । वहीं से वह उसे उठाकर यहाँ ले आया और अब उसे अपना पति मान लेने को कहता है । उसने सोच लिया है कि अपने प्राण दे देगी, मगर अपनी पवित्रता नष्ट नहीं होने देगी । वह बोलते-बोलते सिसकने लगी और उसका गला रुँध गया ।

विक्रम ने उसे आश्वासन दिया कि वे राक्षस का वध करके उसकी समस्या का अन्त कर देंगे और उन्होंने राक्षस के फिर से जीवित होने का राज पूछा । उस स्त्री ने जवाब दिया कि राक्षस के पेट में एक मोहिनी वास करती है जो उसके मरते ही उसके मुँह में अमृत डाल देती है । उसे तो वह जीवित कर सकती है, मगर उसके रक्त से पैदा होने वाले दूसरे राक्षस को नहीं, इसलिए वह दूसरा राक्षस अपंग होकर दम तोड़ रहा है । यह सुनकर विक्रम ने कहा कि वे प्रण करते हैं कि उस राक्षस का वध किए बगैर अपने महल नहीं लौटेंगे चाहे कितनी भी प्रतीक्षा क्यों न करनी पड़े । उन्होंने जब उससे मोहिनी के बारे में पूछा तो स्त्री ने अनभिज्ञता जताई । विक्रम एक पेड़ की छाया में विश्राम करने लगे । तभी एक सिंह झाड़ियों में से निकलकर विक्रम पर झपटा ।

चूंकि विक्रम पूरी तरह चौकन्ने नहीं थे, इसलिए सिंह उनकी बाँह पर घाव लगाता हुआ चला गया । अब विक्रम भी पूरी तरह हमले के लिए तैयार हो गए । दूसरी बार जब सिंह उनकी ओर झपटा तो उन्होंने उसके पैरों को पकड़कर उसे पूरे ज़ोर से हवा में उछाल दिया । सिंह बहुत दूर जाकर गिरा और क्रुद्ध होकर उसने गर्जना की । दूसरे ही पल सिंह ने भागने वाले राक्षस का रूप धर लिया । अब विक्रम की समझ में आ गया कि उसने छल से उन्हें हराना चाहा था । वे लपक कर राक्षस से भिड़ गए । दोनों में फिर भीषण युद्ध शुरू हो गया । जब राक्षस की साँस लड़ते-लड़ते फूलने लगी, तो विक्रम ने तलवार उसके पेट में घुसेड़ दी ।

राक्षस धरती पर गिरकर दर्द से चीखने लगा । विक्रम ने उसके बाद तलवार से उसका पेट फाड़ दिया । पेट फटते ही मोहिनी कूदकर बाहर आई और अमृत लाने दौड़ी । विक्रम ने बेतालों का स्मरण किया और उन्हें मोहिनी को पकड़ने का आदेश दिया । अमृत न मिल पाने के कारण राक्षस तड़पकर मर गया । मोहिनी ने अपने बारे में बताया कि वह शिव की गणिका थी जिसे किसी गलती की सज्जा के रूप में राक्षस की सेविका बनना पड़ा । महल लौटकर विक्रम ने ब्राह्मण कन्या को उसके माता-पिता को सौप दिया और मोहिनी से खुद विधिवत् विवाह कर लिया ।

## तेरहवीं पुतली कीर्तिमती

**तेरहवीं पुतली कीर्तिमती ने इस प्रकार कथा कही-**

एक बार राजा विक्रमादित्य ने एक महाभोज का आयोजन किया । उस भोज में असंख्य विद्वान, ब्राह्मण, व्यापारी तथा दरबारी आमन्त्रित थे । भोज के मध्य में इस बात पर चर्चा चली कि संसार में सबसे बड़ा दानी कौन है । सभी ने एक स्वर से विक्रमादित्य को दुनिया का सर्वश्रेष्ठ दानवीर घोषित किया । राजा विक्रमादित्य लोगों के भाव देख रहे थे । तभी उनकी नज़र एक ब्राह्मण पर पड़ी जो अपनी राय नहीं दे रहा था । लेकिन उसके चेहरे के भाव से स्पष्ट प्रतीत होता था कि वह सभी लोगों के विचार से सहमत नहीं है । विक्रम ने उससे उसकी चुप्पी का मतलब पूछा तो वह डरते हुए बोला कि सबसे अलग राय देने पर कौन उसकी बात सुनेगा । राजा ने उसका विचार पूछा तो वह बोला कि वह असमंजस की स्थिति में पड़ा हुआ है । अगर वह सच नहीं बताता, तो उसे झूठ का पाप लगता है और सच बोलने की स्थिति में उसे डर है कि राजा का कोपभाजन बनना पड़ेगा ।

अब विक्रम की जिज्ञासा और बढ़ गई । उन्होंने उसकी स्पष्टवादिता की भरि-भूरि प्रशंसा की तथा उसे निर्भय होकर अपनी बात कहने को कहा । तब उसने कहा कि महराज विक्रमादित्य बहुत बड़े दानी हैं- यह बात सत्य है पर इस भूलोक पर सबसे बड़े दानी नहीं । यह सुनते ही सब चौंके । सबने विस्मित होकर पूछा क्या ऐसा हो सकता है? उस पर उस ब्राह्मण ने कहा कि समुद्र पर एक राज्य है जहाँ का राजा कीर्कितध्वज जब तक एक लाख स्वर्ण मुद्राएँ प्रतिदिन दान नहीं करता तब तक अन्न-जल भी ग्रहण नहीं करता है । अगर यह बात असत्य प्रमाणित होती है, तो वह ब्राह्मण कोई भी दण्ड पाने को तैयार था । राजा के विशाल भोज कक्ष में निस्तब्धता छा गई । ब्राह्मण ने बताया कि कीर्कितध्वज के राज्य में वह कई दिनों तक रहा और प्रतिदिन स्वर्ण मुद्रा लेने गया ।

सचमुच ही कीर्कितध्वज एक लाख स्वर्ण मुद्राएँ दान करके ही भोजन ग्रहण करता है । यही कारण है कि भोज में उपस्थित सारे लोगों की हाँ-में-हाँ उसने नहीं मिलाई । राजा विक्रमादित्य ब्राह्मण की स्पष्टवादिता से प्रसन्न हो गए और उन्होंने उसे पारितोषिक देकर सादर विदा किया । ब्राह्मण के जाने के बाद राजा विक्रमादित्य ने साधारण वेश धरा और दोनों बेतालों का स्मरण किया । जब दोनों बेताल उपस्थित हुए तो उन्होंने उन्हें समुद्र पार राजा कीर्कितध्वज को राज्य में पहुँचा देने को कहा । बेतालों ने पलक झपकते ही उन्हें वहाँ पहुँचा दिया । कीर्कितध्वज के महल के द्वार पर पहुँचकर उन्होंने अपना परिचय उज्जयिनी नगर के एक साधारण नागरिक के रूप में दिया तथा कीर्कितध्वज से मिलने की इच्छा जताई । कुछ समय बाद जब ने कीर्कितध्वज के सामने उपस्थित हुए, तो उन्होंने उसके यहाँ नौकरी की माँग की । कीर्कितध्वज ने जब पूछा कि वे कौन सा काम कर सकते हैं तो उन्होंने का जो कोई नहीं कर सकता वह काम वे कर दिखाएँगे ।

राजा कीर्कितध्वज को उनका जवाब पसंद आया और विक्रमादित्य को उसके यहाँ नौकरी मिल गई । वे द्वारपाल के रूप में नियुक्त हुए । उन्होंने देखा कि राजा कीर्कितध्वज सचमुच हर दिन एक लाख स्वर्ण मुद्राएँ जब तक दान नहीं कर लेता

अन्न-जल ग्रहण नहीं करता है। उन्होंने यह भी देखा कि राजा कीर्कितध्वज रोज़ शाम में अकेला कहीं निकलता है और जब लौटता है, तो उसके हाथ में एक लाख स्वर्ण मुद्राओं से भरी हुई थैली होती है। एक दिन शाम को उन्होंने छिपकर कीर्कितध्वज का पीछा किया। उन्होंने देखा कि राजा कीर्कितध्वज समुद्र में स्नान करके एक मन्दिर में जाता है और एक प्रतिमा की पूजा-अर्चना करके खौलते तेल के कड़ाह में कूद जाता है।

जब उसका शरीर जल-भुन जाता है, तो कुछ जोगनियाँ आकर उसका जला-भुना शरीर कड़ाह से निकालकर नोच-नोच कर खाती हैं और तृप्त होकर चली जाती हैं। जोगनियों के जाने के बाद प्रतिमा की देवी प्रकट होती है और अमृत की बून्दें डालकर कीर्कितध्वज को जीवित करती है। अपने हाथों से एक लाख स्वर्ण मुद्राएँ कीर्कितध्वज की झोली में जाल देती है और कीर्कितध्वज खुश होकर महल लौट जाता है। प्रातःकाल वही स्वर्ण मुद्राएँ वह याचकों को दान कर देता है। विक्रम की समझ में उसके नित्य एक लाख स्वर्ण मुद्राएँ दान करने का रहस्य आ गया।

अगले दिन राजा कीर्कितध्वज के स्वर्ण मुद्राएँ प्राप्त कर चले जाने के बाद विक्रम ने भी नहा-धो कर देवी की पूजा की और तेल के कड़ाह में कूद गए। जोगनियाँ जब उनके जले-भुने शरीर को नोचकर खाकर चली गई तो देवी ने उनको जीवित किया। जीवित करके जब देवी ने उन्हें स्वर्ण मुद्राएँ देनी चाहीं तो उन्होंने यह कहकर मना कर दिया कि देवी की कृपा ही उनके लिए सर्वोपरि है। यह क्रिया उन्होंने सात बार दुहराई। सातवीं बार देवी ने उनसे बस करने को कहा तथा उनसे कुछ भी मांग लेने को कहा। विक्रम इसी अवसर की ताक में थे। उन्होंने देवी से वह थैली ही मांग ली जिससे स्वर्ण मुद्राएँ निकलती थीं। ज्योंहि देवी ने वह थैली उन्हें सौंपी- चमत्कार हुआ।

मन्दिर, प्रतिमा- सब कुछ गायब हो गया। अब दूर तक केवल समुद्र तट दिखता था। दूसरे दिन जब कीर्कितध्वज वहाँ आया तो बहुत निराश हुआ। उसका वर्षों का एक लाख स्वर्ण मुद्राएँ दान करने का नियम टूट गया। अन्न-जल त्याग कर अपने कक्ष में असहाय पड़ा रहा। उसका शरीर क्षीण होने लगा। जब उसकी हालत बहुत अधिक बिगड़ने लगी, तो विक्रम उसके पास गए और उसकी उदासी का कारण जानना चाहा। उसने विक्रम को जब सब कुछ खुद बताया तो विक्रम ने उसे देवी वाली थैली देते हुए कहा कि रोज़-रोज़ कड़ाह में उसे कूदकर प्राण गँवाते देख वे द्रवित हो गए, इसलिए उन्होंने देवी से वह थैली ही सदा के लिए प्राप्त कर ली।

वह थैली राजा कीर्कितध्वज को देकर उन्होंने उस वचन की भी रक्षा कर ली, जो देकर उन्हें कीर्कितध्वज के दरबार में नौकरी मिली थी। उन्होंने सचमुच वही काम कर दिखाया जो कोई भी नहीं कर सकता है। राजा कीर्कितध्वज ने उनका परिचय पाकर उन्हें सीने से लगाते हुए कहा कि वे सचमुच इस धरा पर सर्वश्रेष्ठ दानवीर हैं, क्योंकि उन्होंने इतनी कठिनाई के बाद प्राप्त स्वर्ण मुद्रा प्रदान करने वाली थैली ही बेझिझक दान कर डाली जैसे कोई तुच्छ चीज़ हो।

## चौदहवीं पुतली सुनयना

चौदहवीं पुतली सुनयना ने जो कथा की वह इस प्रकार है- राजा विक्रमादित्य सारे नृपोचित गुणों के सागर थे। उन जैसा न्यायप्रिय, दानी और त्यागी और कोई न था। इन नृपोचित गुणों के अलावा उनमें एक और गुण था। वे बहुत बड़े शिकारी थे तथा निहत्ये भी हिंसक से हिंसक जानवरों का वध कर सकते थे। उन्हें पता चला कि एक हिंसक सिंह बहुत उत्पात मचा रहा है और कई लोगों का भक्षण कर चुका है, इसलिए उन्होंने उस सिंह के शिकार की योजना बनाई और आखेट को निकल पड़े। जंगल में घुसते ही उन्हें सिंह दिखाई पड़ा और उन्होंने सिंह के पीछे अपना घोड़ा डाल दिया। वह सिंह कुछ दूर पर एक घनी झाड़ी में घुस गया। राजा घोड़े से कूदे और उस सिंह की तलाश करने लगे। अचानक सिंह उन पर झापटा, तो उन्होंने उस पर तलवार का वार किया। झाड़ी की वजह से वार पूरे ज़ोर से नहीं हो सका, मगर सिंह घायल होकर दहाड़ा और पीछे हटकर घने वन में गायब हो गया।

वे सिंह के पीछे इतनी तेज़ी से भागे कि अपने साथियों से काफी दूर निकल गए। सिंह फिर झाड़ियों में छुप गया। राजा ने झाड़ियों में उसकी खोज शुरू की। अचानक उस शेर ने राजा के घोड़े पर हमला कर दिया और उसे गहरे घाव दे दिए। घोड़ा भय और दर्द से हिनहिनाया, तो राजा पलटे। घोड़े के घावों से खून का फव्वारा फूट पड़। राजा ने दूसरे हमले से घोड़े को तो बचा लिया, मगर उसके बहते खून ने उन्हें चिन्तित कर दिया। वे सिंह से उसकी रक्षा के लिए उसे किसी सुरक्षित जगह ले जाना चाहते थे, इसलिए उसे लेकर आगे बढ़े। उन्हें उस घने वन में दिशा का बिल्कुल ज्ञान नहीं रहा। एक जगह उन्होंने एक छोटी सी नदी बहती देखी। वे घोड़े को लेकर नदी तक आए ही थे कि घोड़े ने रक्त अधिक बह जाने के कारण दम तोड़ दिया।

उसे मरता देख राजा दुख से भर उठे। संध्या गहराने लगी थी, इसलिए उन्होंने आगे न बढ़ना ही बुद्धिमानी समझा। वे एक वृक्ष से टिक्कर अपनी थकान उतारने लगे। कुछ ही क्षणों बाद उनका ध्यान नदी का धारा में हो रहे कोलाहल की ओर गया उन्होंने देख दो व्यक्ति एक तैरते हुए शब को दोनों ओर से पकड़े झागड़ रहे हैं। लड़ते-लड़ते वे दोनों शब को किनारे लाए। उन्होंने देख कि उनमें से एक मानव मुण्डों की माला पहने वीभत्स दिखने वाला कापालिक है तथा दूसरा एक बेताल है जिसकी पाठ का ऊपरी हिस्सा नदी के ऊपर उड़ता-सा दिख रहा था। वे दोनों उस शब पर अपना-अपना अधिकार जता रहे थे। कापालिक का कहना था कि यह शब उसने तांत्रिक साधना के लिए पकड़ा है और बेताल उस शब को खाकर अपनी भूख मिटाना चाहता था।

दोनों में से कोई भी अपना दावा छोड़ने को तैयार नहीं था। विक्रम को सामने पाकर उन्होंने उन पर न्याय का भार सौंपना चाहा तो विक्रम ने अपनी शत्रु रखी। पहली यह कि उनका फैसला दोनों को मान्य होगा और दूसरी कि उन्हें वे न्याय के लिए शुल्क अदा करेंगे। कापालिक ने उन्हें शुल्क के रूप में एक बटुआ दिया जो चमत्कारी था तथा मांगने पर कुछ भी दे सकता था। बेताल ने उन्हें मोहिनी काष्ठ का टुकड़ा दिया जिसका चंदन घिस कर लगाकर अदृश्य हुआ जा सकता था।

उन्होंने बेताल को भूख मिटाने के लिए अपना मृत घोड़ा दे दिया तथा कापालिक को तंत्र साधना के लिए शव। इस न्याय से दोनों बहुत खुश हुए तथा सन्तुष्ट होकर चले गए।

रात घिर आई थी और राजा को ज़ोरों की भूख लगी थी, इसलिए उन्होंने बटुए से भोजन मांगा। तरह-तरह के व्यंजन उपस्थित हुए और राजा ने अपनी भूख मिटाई। फिर उन्होंने मोहिनी काष्ठ के टुकड़े को चिसकर उसका चंदन लगा लिया और अदृश्य हो गए। अब उन्हें किसी भी हिंसक वन्य जन्तु से खतरा नहीं रहा। अगली सुबह उन्होंने काली द्वारा प्रदत्त दोनों बेतालों का स्मरण किया तथा अपने राज्य की सीमा पर पहुँच गए। उन्हें महल के रास्त में एक भिखारी मिला, जो भूखा था। राजा ने तुरन्त कापालिक वाला बटुआ उसे दे दिया ताकि ज़िन्दगी भर उसे भोजन की कमी न हो।

## पन्द्रहवीं पुतली सुन्दरवती

पन्द्रहवीं पुतली की कथा इस प्रकार है- राजा विक्रमादित्य के शासन काल में उज्जैन राज्य की समृद्धि आकाश छूने लगी थी। व्यापारियों का व्यापार अपने देश तक ही सीमित नहीं था, बल्कि दूर के देशों तक फैला हुआ था। उन दिनों एक सेठ हुआ जिसका नाम पन्नालाल था। वह बड़ा ही दयालु तथा परोपकारी था। चारों ओर उसका यश था। वह दीन-दुखियों की सहायता के लिए सतत तैयार रहता था। उसका पुत्र था हीरालाल, जो पिता की तरह ही नेक और अच्छे गुणों वाला था। वह जब विवाह योग्य हुआ, तो पन्नालाल अच्छे रिश्तों की तलाश करने लगा। एक दिन एक ब्राह्मण ने उसे बताया कि समुद्र पार एक नामी व्यापारी है जिसकी कन्या बहुत ही सुशील तथा गुणवती है।

पन्नालाल ने फौरन उसे आने-जाने का खर्च देकर कन्या पक्ष वालों के यहाँ रिश्ता पक्का करने के लिए भेजा। कन्या के पिता को रिश्ता पसंद आया और उनकी शादी पक्की कर दी गई। विवाह का दिन जब समीप आया, तो मूसलाधार बारिश होने लगी। नदी-नाले जल से भर गए और द्वीप तक पहुँचने का मार्ग अवरुद्ध हो गया। बहुत लम्बा एक मार्ग था, मगर उससे विवाह की तिथि तक पहुँचना असम्भव था। सेठ पन्नालाल के लिए यह बिल्कुल अप्रत्याशित हुआ। इस स्थिति के लिए वह तैयार नहीं था, इसलिए बेचैन हो गया। उसने सोचा कि शादी की सारी तैयारी कन्या पक्ष वाले कर लेंगे और किसी कारण बारात नहीं पहुँची, तो उसको ताने सुनने पड़ेंगे और जगहँसाई होगी।

जब कोई हल नहीं सूझा, तो विवाह तय कराने वाले ब्राह्मण ने सुझाव दिया कि वह अपनी समस्या राजा विक्रमादित्य के समक्ष रखे। उनके अस्तबल में पवन वेग से उड़ने वाला रथ है और उसमें प्रयुक्त होने वाले घोड़े हैं। उस रथ पर आठ-दस लोग वर सहित चले जाएँगे और विवाह का कार्य शुरू हो जाएगा। बाकी लोग लम्बे रास्ते से होकर बाद में सम्मिलित हो जाएँगे। सेठ पन्नालाल तुरन्त राजा के पास पहुँचा और अपनी समस्या बताकर हिचकिचाते हुए रथ की माँग की। विक्रम ने मुस्कराकर कहा कि राजा की हर चीज़ प्रजा के हित की रक्षा के लिए होती है और उन्होंने अस्तबल के प्रबन्धक को बुलाकर तत्काल उसे घोड़े सहित वह रथ दिलवा दिया।

प्रसन्नता के मारे पन्नालाल को नहीं सूझा कि विक्रम को कैसे धन्यवाद दे। जब वह रथ और घोड़े सहित चला गया, तो विक्रम को चिन्ता हुई कि जिस काम के लिए सेठ ने रथ लिया है, कहीं वह कार्य भीषण वर्षा की वजह से बाधित न हो जाए। उन्होंने माँ काली द्वारा प्रदत्त बेतालों का स्मरण किया और उन्हें सकुशल वर को विवाह स्थल तक ले जाने तथा विवाह सम्पन्न कराने की आज्ञा दी। जब वर वाला रथ पवन वेग से दौड़ने को तैयार हुआ, तो दोनों बेताल छाया की तरह रथ के साथ चल पड़े। यात्रा के मध्य में सेठ ने देखा कि रास्ता कहीं भी नहीं दिख रहा है, चारों ओर पानी ही पानी है तो उसकी चिन्ता बहुत बढ़ गई। उसे सूझ नहीं रहा था क्या किया जाए। तभी अविश्वसनीय घटना घटी। घोड़ों सहित रथ ज़मीन के ऊपर उड़ने लगा।

रथ जल के ऊपर ही ऊपर उड़ता हुआ निश्चित दिशा में बढ़ रहा था। दरअसल बेतालों ने उसे थाम रखा था और विवाह स्थल की ओर उड़े जा रहे थे। निश्चित मुहूर में सेठ के पुल का विवाह सम्पन्न हो गया। कन्या को साथ लेकर जब सेठ पन्नालाल उज्जैन लौटा, तो घर के बदले सीधा राजदरबार गया। विक्रमादित्य ने वर-वधु को आशीर्वाद दिया। सेठ पन्नालाल घोड़े और रथ की प्रशंसा में ही खोया रहा। राजा विक्रमादित्य उसका आशय समझ गए और उन्होंने अश्व तथा रथ उसे उपहार स्वरूप दे दिया।

## सोलहवीं पुतली सत्यवती

सोलहवीं पुतली सत्यवती ने जो कथा कही वह इस प्रकार है- राजा विक्रमादित्य के शासन काल में उज्जैन नगरी का यश चारों ओर फैला हुआ था। एक से बढ़कर एक विद्वान् उनके दरबार की शोभा बढ़ाते थे और उनकी नौ जानकारों की एक समिति थी जो हर विषय पर राजा को परामर्श देते थे, तथा राजा उनके परामर्श के अनुसार ही राज-काज सम्बन्धी निर्णय लिया करते थे। एक बार ऐश्वर्य पर बहस छिड़ी, तो मृत्युलोक की भी बात चली। राजा को जब पता चला कि पाताल लोक के राजा शेषनाग का ऐश्वर्य देखने लायक है और उनके लोक में हर तरह की सुख-सुविधाएँ मौजूद हैं। चूँकि वे भगवान् विष्णु के खास सेवकों में से एक हैं, इसलिए उनका स्थान देवताओं के समकक्ष है। उनके दर्शन से मनुष्य का जीवन धन्य हो जाता है।

विक्रमादित्य ने सशरीर पाताल लोक जाकर उनसे भेट करने की ठान ली। उन्होंने दोनों बेतालों का स्मरण किया। जब वे उपस्थित हुए, तो उन्होंने उनसे पाताल लोक ले चलने को कहा। बेताल उन्हें जब पाताल लोक लाए, तो उन्होंने पाताल लोक के बारे में दी गई सारी जानकारी सही पाई। सारा लोक साफ-सुथरा तथा सुनियोजित था। हीरे-जवाहरात से पूरा लोक जगमगा रहा था। जब शेषनाग को खबर मिली कि मृत्युलोक से कोई सशरीर आया है तो वे उनसे मिले। राजा विक्रमादित्य ने पूरे आदर तथा नम्रता से उन्हें अपने आने का प्रयोजन बताया तथा अपना परिचय दिया। उनके व्यवहार से शेषनाग इतने प्रसन्न हो गए कि उन्होंने चलते वDत उन्हें चार चमत्कारी रत्न उपहार में दिए। पहले रत्न से मुँहमाँगा धन प्राप्त किया जा सकता था।

दूसरा रत्न माँगने पर हर तरह के वस तथा आभूषण दे सकता था। तीसरे रत्न से हर तरह के रथ, अश्व तथा पालकी की प्राप्ति हो सकती थी। चौथा रत्न धर्म-कार्य तथा यश की प्राप्ति करना सकता था। काली द्वारा प्रदत्त दोनों बेताल स्मरण करने पर उपस्थित हुए तथा विक्रम को उनके नगर की सीमा पर पहुँचा कर अटश्य हो गए। चारों रत्न लेकर अपने नगर में प्रविष्ट हुए ही थे कि उनका अभिवादन एक परिचित ब्राह्मण ने किया। उन्होंने राजा से उनकी पाताल लोक की यात्रा तथा रत्न प्राप्त करने की बात जानकर कहा कि राजा की हर उपलब्धि में उनकी प्रजा की सहभागिता है। राजा विक्रमादित्य ने उसका अभिप्राय समझकर उससे अपनी इच्छा से एक रत्न ले लेने को कहा। ब्राह्मण असमंजस में पड़ गया और बोला कि अपने परिवार के हर सदस्य से विमर्श करने के बाद ही कोई फैसला करेगा। जब वह घर पहुँचा और अपनी पत्नी बेटे तथा बेटी से सारी बात बताई, तो तीनों ने तीन अलग तरह के रत्नों में अपनी रुचि जताई। ब्राह्मण फिर भी किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँच सका और इसी मानसिक दशा में राजा के पास पहुँच गया। विक्रम ने हँसकर उसे चारों के चारों रत्न उपहार में दिए।

## सत्रहवीं पुतली विद्यावती

विद्यावती नामक सत्रहवीं पुतली ने जो कथा कही वह इस प्रकार है- महाराजा विक्रमादित्य की प्रजा को कोई कमी नहीं थीं। सभी लोग संतुष्ट तथा प्रसन्न रहते थे। कभी कोई समस्या लेकर यदि कोई दरबार आता था उसकी समस्या को तत्काल हल कर दिया जाता था। प्रजा को किसी प्रकार का कष्ट देने वाले अधिकारी को दण्डित किया जाता था। इसलिए कहीं से भी किसी तरह की शिकायत नहीं सुनने को मिलती थी। राजा खुद भी वेश बदलकर समय-समय पर राज्य की स्थिति के बारे में जानने को निकलते थे। ऐसे ही एक रात जब वे वेश बदलकर अपने राज्य का भ्रमण कर रहे थे तो उन्हें एक झोंपड़े से एक बातचीत का अंश सुनाई पड़ा। कोई औरत अपने पति को राजा से साफ़-साफ़ कुछ बताने को कह रही थी और उसका पति उसे कह रहा था कि अपने स्वार्थ के लिए अपने महान राजा के प्राण वह संकट में नहीं डाल सकता है।

विक्रम समझ गए कि उनकी समस्या से उनका कुछ सम्बन्ध है। उनसे रहा नहीं गाया। अपनी प्रजा की हर समस्या को हल करना वे अपना कर्तव्य समझते थे। उन्होंने द्वार खटखटाया, तो एक ब्राह्मण दम्पत्ति ने दरवाजा खोला। विक्रम ने अपना परिचय देकर उनसे उनकी समस्या के बारे में पूछा तो वे थर-थर काँपने लगे। जब उन्होंने निर्भय होकर उन्हें सब कुछ स्पष्ट बताने को कहा तो ब्राह्मण ने उन्हें सारी बात बता दी। ब्राह्मण दम्पत्ति विवाह के बारह साल बाद भी निःसंतान थे।

इन बारह सालों में संतान के लिए उन्होंने काफ़ी यत्न किए। व्रत-उपवास, धर्म-कर्म, पूजा-पाठ हर तरह की चेष्टा की पर कोई फायदा नहीं हुआ। ब्राह्मणी ने एक सपना देखा है। स्वप्न में एक देवी ने आकर उसे बताया कि तीस कोस की दूरी पर पूर्व दिशा में एक घना जंगल है जहाँ कुछ साधु सन्यासी शिव की स्तुति कर रहे हैं। शिव को प्रसन्न करने के लिए हवन कुण्ड में अपने अंग काटकर डाल रहे हैं। अगर उन्हीं की तरह राजा विक्रमादित्य उस हवन कुण्ड में अपने अंग काटकर फेंकें, तो शिव प्रसन्न होकर उनसे उनकी इच्छित चीज़ माँगने को कहेंगे। वे शिव से ब्राह्मण दम्पत्ति के लिए संतान की माँग कर सकते हैं और उन्हें सन्तान प्राप्ति हो जाएगी।

विक्रम ने यह सुनकर उन्हें आश्वासन दिया कि वे यह कार्य अवश्य करेंगे। रास्त में उन्होंने बेतालों को स्मरण कर बुलाया तथा उस हवन स्थल तक पहुँचा देने को कहा। उस स्थान पर सचमुच साधु-सन्यासी हवन कर रहे थे तथा अपने अंगों को काटकर अग्नि-कुण्ड में फेंक रहे थे। विक्रम भी एक तरफ बैठ गए और उन्हीं की तरह अपने अंग काटकर अग्नि को अर्पित करने लगे। जब विक्रम सहित वे सारे जलकर राख हो गए तो एक शिवगण वहाँ पहुँचा तथा उसने सारे तपस्विओं को अमृत डालकर ज़िन्दा कर दिया, मगर भूल से विक्रम को छोड़ दिया।

सारे तपस्वी ज़िन्दा हुए तो उन्होंने राख हुए विक्रम को देखा। सभी तपस्विओं ने मिलकर शिव की स्तुति की तथा उनसे विक्रम को जीवित करने की प्रार्थना करने लगे। भगवान शिव ने तपस्विओं की प्रार्थना सुन ली तथा अमृत डालकर विक्रम को जीवित कर दिया। विक्रम ने जीवित होते ही शिव के सामने नतमस्तक होकर ब्राह्मण दम्पत्ति को संतान सुख देने के लिए प्रार्थना की। शिव उनकी परोपकार तथा त्याग की भावना से काफ़ी प्रसन्न हुए तथा उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। कुछ दिनों बाद सचमुच ब्राह्मण दम्पत्ति को पुत्र लाभ हुआ।

## अठारहवीं पुतली तारावती

अठारहवीं पुतली तारामती की कथा इस प्रकार है- राजा विक्रमादित्य की गुणग्राहिता का कोई जवाब नहीं था। वे विद्वानों तथा कलाकारों को बहुत सम्मान देते थे। उनके दरबार में एक से बढ़कर एक विद्वान तथा कलाकार मौजूद थे, फिर भी अन्य राज्यों से भी योग्य व्यक्ति आकर उनसे अपनी योग्यता के अनुरूप आदर और पारितोषिक प्राप्त करते थे। एक दिन विक्रम के दरबार में दक्षिण भारत के किसी राज्य से एक विद्वान आशय था कि विश्वासघात विश्व का सबसे नीच कर्म है। उसने राजा को अपना विचार स्पष्ट करने के लिए एक कथा सुनाई। उसने कहा- आर्योव में बहुत समय पहले एक राजा था। उसका भरा-पूरा परिवार था, फिर भी सत्तर वर्ष की आयु में उसने एक रूपवती कन्या से विवाह किया। वह नई रानी के रूप पर इतना मोहित हो गया कि उससे एक पल भी अलग होने का उसका मन नहीं करता था।

वह चाहता था कि हर वर्ष उसका चेहरा उसके सामने रहे। वह नई रानी को दरबार में भी अपने बगल में बिठाने लगा। उसके सामने कोई भी कुछ बोलने का साहस नहीं करता, मगर उसके पीठ पीछे सब उसका उपहास करते। राजा के महामन्त्री को यह बात बुरी लगी। उसने एकांत में राजा से कहा कि सब उसकी इस की आलोचना करते हैं। अगर वह हर पल नई रानी का चेहरा देखता रहना चाहता है तो उसकी अच्छी-सी तस्वीर बनवाकर राजसिंहासन के सामने रखवा दे। चूँकि इस राज्य में राजा के अकेले बैठने की परम्परा रही है, इसलिए उसका रानी को दरबार में अपने साथ लाना अशोभनीय है।

महामन्त्री राजा का युवाकाल से ही मिल जैसा था और राजा उसकी हर बात को गंभीरतापूर्वक लेता था। उसने महामन्त्री से किसी अच्छे चित्रकार को छोटी रानी के चित्र को बनाने का काम सौंपने को कही। महामन्त्री ने एक बड़े ही योग्य चित्रकार को बुलाया। चित्रकार ने रानी का चित्र बनाना शुरू कर दिया। जब चित्र बनकर राजदरबार आया, तो हर कोई चित्रकार का प्रशंसक हो गया। बारीक से बारीक चीज़ को भी चित्रकार ने उस चित्र में उतार दिया था। चित्र ऐसा जीवंत था मानो छोटी रानी किसी भी क्षण बोल पड़ेगी। राजा को भी चित्र बहुत पसंद आया। तभी उसकी नज़र चित्रकार द्वारा बनाई गई रानी की जंघा पर गई, जिस पर चित्रकार ने बड़ी सफाई से एक तिल दिखा दिया था। राजा को शंका हुई कि रानी के गुप्त अंग भी चित्रकार ने देखे हैं और क्रोधित होकर उसने चित्रकार से सच्चाई बताने को कहा।

चित्रकार ने पूरी शालीनता से उसे विश्वास दिलाने की कोशिश की कि प्रकृति ने उसे सूक्ष्म दृष्टि दी है जिससे उसे छिपी हुई बात भी पता चल जाती है। तिल उसी का एक प्रमाण है और उसने तिल को खूबसूरती बढ़ाने के लिए दिखाने की कोशिश की है। राजा को उसकी बात का ज़रा भी विश्वास नहीं हुआ। उसने जल्लादों को बुलाकर तत्काल घने जंगल में जाकर उसकी गर्दन उड़ा देने का हुक्म दिया तथा कहा कि उसकी आँखें निकालकर दरबार में उसके सामने पेश करें। महामन्त्री को पता था कि चित्रकार की बातें सच हैं। उसने रास्ते में उन जल्लादों को धन का लोभ देकर चित्रकार को मुक्त करवा लिया तथा उन्हें किसी हिरण को मारकर उसकी आँखें निकाल लेने को कहा ताकि राजा के विश्वास हो जाए कि कलाकार को खत्म

कर दिया गया है। चित्रकार को लेकर महामन्त्री अपने भवन ले आया तथा चित्रकार वेश बदलकर उसी के साथ रहने लगा।

कुछ दिनों बाद राजा का पुत्र शिकार खेलने गया, तो एक शेर उसके पीछे पड़ गया। राजकुमार जान बचाने के लिए एक पेड़ पर चढ़ गया। तभी उसकी नज़र पेड़ पर पहले से मौजूद एक भालू पर पड़ी। भालू से जब वह भयभीत हुआ तो भालू ने उससे निश्चिन्त रहने को कहा। भालू ने कहा कि वह भी उसी की तरह शेर से डरकर पेड़ पर चढ़ा हुआ है और शेर के जाने की प्रतीक्षा कर रहा है। शेर भूखा था और उन दोनों पर आँख जमाकर उस पेड़ के नीचे बैठा था। राजकुमार को बैठे-बैठे नींद आने लगी और जगे रहना उसे मुश्किल दिख पड़ा। भालू ने अपनी ओर उसे बुला दिया एक घनी शाखा पर कुछ देर सो लेने को कहा। भालू ने कहा कि जब वह सोकर उठ जाएगा तो वह जागकर रखवाली करेगा और भालू सोएगा जब राजकुमार सो गया तो शेर ने भालू को फुसलाने की कोशिश की। उसने कहा कि वह और भालू वन्य प्राणी हैं, इसलिए दोनों को एक दूसरे का भला सोचना चाहिए। मनुष्य कभी भी वन्य प्राणियों का दोस्त नहीं हो सकता।

उसने भालू से राजकुमार को गिरा देने को कहा जिससे कि वह उसे अपना ग्रास बना सके। मगर भालू ने उसकी बात नहीं मानी तथा कहा कि वह विश्वासघात नहीं कर सकता। शेर मन मसोसकर रह गया। चार धंटों की नींद पूरी करने के बाद जब राजकुमार जागा, तो भालू की बारी आई और वह सो गया। शेर ने अब राजकुमार को फुसलाने की कोशिश की। उसने कहा कि क्यों वह भालू के लिए दुख भोग रहा है। वह अगर भालू को गिरा देता हो तो शेर की भूख मिट जाएगी और वह आराम से राजमहल लौट जाएगा। राजकुमार उसकी बातों में आ गया। उसने धक्का देकर भालू को गिराने की कोशिश की। मगर भालू न जाने कैसे जाग गया और राजकुमार को विश्वासघाती कहकर खूब धिक्कारा। राजकुमार की अन्तरात्मा ने उसे इतना कोसा कि वह गँगा हो गया।

जब शेर भूख के मारे जंगल में अन्य शिकार की खोज में निकल गया तो वह राजमहल पहुँचा। किसी को भी उसके गँगा होने की बात समझ में नहीं आई। कई बड़े वैद्य आए, मगर राजकुमार का रोग किसी की समझ में नहीं आया। आखिरकार महामन्त्री के घर छिपा हुआ वह कलाकार वैद्य का रूप धरकर राजकुमार के पास आया। उसने गँगे राजकुमार के चेहरे का भाव पढ़कर सब कुछ जान लिया। उसने राजकुमार को संकेत की भाषा में पूछ कि क्या आत्मग्लानि से पीड़ित होकर वह अपनी वाणी खो चुका है, तो राजकुमार फूट-फूट कर रो पड़ा।

रोने से उस पर मनोवैज्ञानिक असर पड़ा और उसकी खोई वाणी लौट आई। राजा को बड़ा आश्र्य हुआ कि उसने राजकुमार के चेहरे को देखकर सच्चाई कैसे जान ली तो चित्रकार ने जवाब दिया कि जिस तरह कलाकार ने उनकी रानी की जाँघ का तिल देख लिया था। राजा तुरन्त समझ गया कि वह वही कलाकार था जिसके वध की उसने आज्ञा दी थी। वह चित्रकार से अपनी भूल की माफी माँगने लगा तथा ढेर सारे इनाम देकर उसे सम्मानित किया।

उस दक्षिण के विद्वान की कथा से विक्रमादित्य बहुत प्रसन्न हुए तथा उसके पाण्डित्य का सम्मान करते हुए उन्होंने उसे एक लाख स्वर्ण मुद्राएँ दी।

## उन्नीसवीं पुतली रूपरेखा

रूपरेखा नामक उन्नीसवीं पुतली ने जो कथा सुनाई वह इस प्रकार है-

राजा विक्रमादित्य के दरबार में लोग अपनी समस्याएँ लेकर न्याय के लिए तो आते ही थे कभी-कभी उन प्रश्नों को लेकर भी उपस्थित होते थे जिनका कोई समाधान उन्हें नहीं सूझता था। विक्रम उन प्रश्नों का ऐसा सटीक हल निकालते थे कि प्रश्नकर्ता पूर्ण सन्तुष्ट हो जाता था। ऐसे ही एक टेढ़े प्रश्न को लेकर एक दिन दो तपस्वी दरबार में आए और उन्होंने विक्रम सो अपने प्रश्न का उत्तर देने की विनती की। उनमें से एक का मानना था कि मनुष्य का मन ही उसके सारे क्रिया-कलाप पर नियंत्रण रखता है और मनुष्य कभी भी अपने मन के विरुद्ध कुछ भी नहीं कर सकता है। दूसरा उसके मत से सहमत नहीं था। उसका कहना था कि मनुष्य का ज्ञान उसके सारे क्रिया-कलाप नियंत्रित करता है। मन भी ज्ञान का दास है और वह भी ज्ञान द्वारा दिए गए निर्देशों का पालन करने को बाध्य है।

राजा विक्रमादित्य ने उनके विवाद के विषय को गौर से सुना पर तुरन्त उस विषय पर अपना कोई निर्णय नहीं दे पाए। उन्होंने उन दोनों तपस्वियों को कुछ समय बाद आने को कहा। जब वे चले गए तो विक्रम उनके प्रश्न के बारे में सोचने लगे जो सचमुच ही बहुत टेढ़ा था। उन्होंने एक पल सोचा कि मनुष्य का मन सचमुच बहुत चंचल होता है और उसके वशीभूत होकर मनुष्य सांसारिक वासना के अधीन हो जाता है। मगर दूसरे ही पल उन्हें ज्ञान की याद आई। उन्हें लगा कि ज्ञान सचमुच मनुष्य को मन का कहा करने से पहले विचार कर लेने को कहता है और किसी निर्णय के लिए प्रेरित करता है।

विक्रम ऐसे उलझे सवालों का जवाब सामान्य लोगों की ज़िन्दगी में खोजते थे, इसलिए वे साधारण नागरिक का वेश बदलकर अपने राज्य में निकल पड़े। उन्हें कई दिनों तक ऐसी कोई बात देखने को नहीं मिली जो प्रश्न को हल करने में सहायता करती। एक दिन उनकी नज़र एक ऐसे नौजवान पर पड़ी जिसके कपड़ों और भावों में उसकी विपन्नता झलकती थी। वह एक पेड़ के नीचे थककर आराम कर रहा था। बगल में एक बैलगाड़ी खड़ी थी जिसकी वह कोचवानी करता था।

राजा ने उसके निकट जाकर देखा तो वे उसे एक झलक में ही पहचान गए। वह उनके अभिन्न मित्र सेठ गोपाल दास का छोटा बेटा था। सेठ गोपाल दास बहुत बड़े व्यापारी थे और उन्होंने व्यापार से बहुत धन कमाया था। उनके बेटे की यह दुर्दशा देखकर उनकी जिज्ञासा बढ़ गई। उसकी बदहाली का कारण जानने को उत्सुक हो गये। उन्होंने उससे पूछा कि उसकी यह दशा कैसे हुई जबकि मरते समय गोपाल दास ने अपना सारा धन और व्यापार अपने दोनों पुत्रों में समान रूप से बाँट दिया था। एक के हिस्से का धन इतना था कि दो पुश्तों तक आराम से ज़िन्दगी गुज़ारी जा सकती थी। विक्रम ने फिर उसके भाई के बारे में भी जानने की जिज्ञासा प्रकट की।

युवक समझ गया कि पूछने वाला सचमुच उसके परिवार के बारे में सारी जानकारी रखता है। उसने विक्रम को अपने और अपने भाई के बारे में सब कुछ बता दिया। उसने बताया कि जब उसके पिता ने उसके और उसके भाई के बीच सब कुछ

बाँट दिया तो उसके भाई ने अपने हिस्से के धन का उपयोग बड़े ही समझदारी से किया। उसने अपनी ज़रूरतों को सीमित रखकर सारा धन व्यापार में लगा दिया और दिन-रात मेहनत करके अपने व्यापार को कई गुण बढ़ा लिया। अपने बुद्धिमान और संयमी भाई से उसने कोई प्रेरणा नहीं ली और अपने हिस्से में मिले अपार धन को देखकर घमण्ड से चूर हो गए। शराबखोरी, रंडीबाजी जुआ खेलना समेत सारी बुरी आदतें डाल लीं। ये सारी आदतें उसके धन के भण्डार के तेज़ी से खोखला करने लगीं। बड़े भाई ने समय रहते उसे चेत जाने को कहा, लेकिन उसकी बातें उसे विष समान प्रतीत हुईं।

ये बुरी आदतें उसे बहुत तेज़ी से बरबादी की तरफ ले गईं और एक वर्ष के अन्दर वह कंगाल हो गया। वह अपने नगर के एक सम्पन्न और प्रतिष्ठित सेठ का पुत्र था, इसलिए उसकी बदहाली का सब उपहास करने लगे। इधर भूखों मरने की नौबत, उधर शर्म से मुँह छुपाने की जगह नहीं। उसका जीना दूभर हो गया। अपने नगर में मजदूर की हैसियत से गुज़ारा करना उसे असंभव लगा तो वहाँ से दूर चला आया। मेहनत-मजदूरी करके अब अपना पेट भरता है तथा अपने भविष्य के लिए भी कुछ करने की सोचता है। धन जब उसके पास प्रचुर मात्रा में था तो मन की चंचलता पर वह अंकुश नहीं लगा सका। धन बरबाद हो जाने पर उसे सद्बृद्धि आई और ठोकरें खाने के बाद अपनी भूल का एहसास हुआ। जब राजा ने पूछा क्या वह धन आने पर फिर से मन का कहा करेगा तो उसने कहा कि ज़माने की ठोकरों ने उसे सच्चा ज्ञान दे दिया है और अब उस ज्ञान के बल पर वह अपने मन को वश में रख सकता है।

विक्रम ने तब जाकर उसे अपना असली परिचय दिया तथा उसे कई स्वर्ण मुद्राएँ देकर होशियारी से व्यापार करने की सलाह दी। उन्होंने उसे भरोसा दिलाया कि लग्न शीलता उसे फिर पहले वाली समृद्धि वापस दिला देगी। उससे विदा लेकर वे अपने महल लौट आए क्योंकि अब उनके पास उन तपस्विओं के विवाद का समाधान था। कुछ समय बाद उनके दरबार में वे दोनों तपस्वी समाधान की इच्छा लिए हाज़िर हुए। विक्रम ने उन्हें कहा कि मनुष्य के शरीर पर उसका मन बार-बार नियंत्रण करने की चेष्टा करता है पर ज्ञान के बल पर विवेकशील मनुष्य मन को अपने पर हावी नहीं होने देता है।

मन और ज्ञान में अन्योनाश्रय सम्बन्ध है तथा दोनों का अपना-अपना महत्व है। जो पूरी तरह अपने मन के वश में हो जाता है उसका सर्वनाश अवश्यम्भावी है। मन अगर रथ है तो ज्ञान सारथि। बिना सारथि रथ अधूरा है। उन्होंने सेठ पुत्र के साथ जो कुछ घटा था उन्हें विस्तारपूर्वक बताया तो उनके मन में कोई संशय नहीं रहा। उन तपस्वियों ने उन्हें एक चमत्कारी खड़िया दिया जिससे बनाई गई तस्वीरें रात में सजीव हो सकती थीं और उनका वार्तालाप भी सुना जा सकता था।

विक्रम ने कुछ तस्वीरें बनाकर खड़िया की सत्यता जानने की कोशिश की तो सचमुच खड़िया में वह गुण था। अब राजा तस्वीरे बना-बना कर अपना मन बहलाने लगे। अपनी रानियों की उन्हें बिल्कुल सुधि नहीं रही। जब रानियाँ कई दिनों के बाद उनके पास आईं तो राजा को खड़िया ने चित्र बनाते हुए देखआ। रानियों ने आकर उनका ध्यान बँटाया तो राजा को हँसी आ गई और उन्होंने कहा वे भी मन के आधीन हो गए थे। अब उन्हें अपने कर्तव्य का ज्ञान हो चुका है।

## बीसवीं पुतली ज्ञानवती

बीसवीं पुतली ज्ञानवती ने जो कथा सुनाई वह इस प्रकार है- राजा विक्रमादित्य सच्चे ज्ञान के बहुत बड़े पारखी थे तथा ज्ञानियों की बहुत कद्र करते थे। उन्होंने अपने दरबार में चुन-चुन कर विद्वानों, पंडितों, लेखकों और कलाकारों को जगह दे रखी थी तथा उनके अनुभव और ज्ञान का भरपूर सम्मान करते थे। एक दिन वे वन में किसी कारण विचरण कर रहे थे तो उनके कानों में दो आदमियों की बातचीत का कुछ अंश पड़ा। उनकी समझ में आ गया कि उनमें से एक ज्योतिषी है तथा उन्होंने चंदन का टीका लगाया और अन्तध्यान हो गए। ज्योतिषी अपने दोस्त को बोला- “मैंने ज्योतिष का पूरा ज्ञान अर्जित कर लिया है और अब मैं तुम्हारे भूत, वर्तमान और भविष्य के बारे में सब कुछ स्पष्ट बता सकता हूँ।”

दूसरा उसकी बातों में कोई रुचि न लेता हुआ बोला- “तुम मेरे भूत और वर्तमान से पूरी तरह परिचित हो इसलिए सब कुछ बता सकते हो और अपने भविष्य के बारे में जानने की मेरी कोई इच्छा नहीं है। अच्छा होता तुम अपना ज्ञान अपने तक ही सीमित रखते।” मगर ज्योतिषी रुकने वाला नहीं था। वह बोला- “इन बिखरी हुई हड्डियों को देख रहे हैं। मैं इन हड्डियों को देखते हुए बता सकता हूँ कि ये हड्डियाँ किस जानवर की हैं तथा जानवर के साथ क्या-क्या बीता।” लेकिन उसके दोस्त ने फिर भी उसकी बातों में अपनी रुचि नहीं जताई। तभी ज्योतिषी की नज़र ज़मीन पर पड़ी पद, चिन्हों पर गई। उसने कहा- “ये पद चिन्ह किसी राजा के हैं और सत्यता की जाँच तुम खुद कर सकते हो। ज्योतिष के अनुसार राजा के पाँवों में ही प्राकृतिक रूप से कमल का चिन्ह होता है जो यहाँ स्पष्ट नज़र आ रहा है।”

उसके दोस्त ने सोचा कि सत्यता की जाँच कर ही ली जाए, अन्यथा यह ज्योतिषी बोलता ही रहेगा। पद चिन्हों का अनुसरण करते-करते वे जंगल में अन्दर आते गए। जहाँ पद चिन्ह समाप्त होते थे वहाँ कुल्हाड़ी लिए एक लकड़हारा खड़ा था तथा कुल्हाड़ी से एक पेड़ काट रहा था। ज्योतिषी ने उसे अपने पाँव दिखाने को कहा। लकड़हारे ने अपने पाँव दिखाए तो उसका दिमाग चकरा गया। लकड़हारे के पाँवों पर प्राकृतिक रूप से कमल के चिन्ह थे। ज्योतिषी ने जब उससे उसका असली परिचय पूछा तो वह लकड़हारा बोला कि उसका जन्म ही एक लकड़हारे के घर हुआ है तथा वह कई पुश्तों से यही काम कर रहा है। ज्योतिषी सोच रहा था कि वह राजकुल का है तथा किसी परिस्थितिवश लकड़हारे का काम कर रहा है।

अब उसका विश्वास अपने ज्योतिष ज्ञान से उठने लगा। उसका दोस्त उसका उपहास करने लगा तो वह चिढ़कर बोला- “चलो चलकर राजा विक्रमादित्य के पाँव देखते हैं। अगर उनके पाँवों पर कमल चिन्ह नहीं हुआ तो मैं समूचे ज्योतिष शास्त्र को झूटा समझूँगा और मान लूँगा कि मेरा ज्योतिष अध्ययन बेकार चला गया।” वे लकड़हारे को छोड़ उज्जैन नगरी को चल पड़े। काफी चलने के बाद राजमहल पहुँचे। राजकमल पहुँच कर उन्होंने विक्रमादित्य से मिलने की इच्छा जताई। जब विक्रम सामने आए तो उन्होंने उनसे अपना पैर दिखाने की प्रार्थना की। विक्रम का पैर देखकर ज्योतिषी सन्न रह गया। उनके पाँव भी साधारण मनुष्यों के पाँव जैसे थे। उन पर वैसी ही आड़ी-तिरछी रेखाएँ थीं। कोई कमल चिन्ह नहीं था।

ज्योतिषी को अपने ज्योतिष ज्ञान पर नहीं, बल्कि पूरे ज्योतिष शास्त्र पर संदेह होने लगा। वह राजा से बोला- “ज्योतिष शास्त्र कहता है कि कमलचिन्ह जिसके पाँवों में मौजूद हों वह व्यक्ति राजा होगा ही मगर यह सरासर असत्य है।

जिसके पाँवों पर मैंने ये चिन्ह देखे वह पुश्तैनी लकड़हारा है। दूर-दूर तक उसका सम्बन्ध किसी राजघराने से नहीं है। पेट भरने के लिए जी तोड़ मेहनत करता है तथा हर सुख-सुविधा से वंचित है। दूसरी ओर आप जैसा चक्रवर्तीं सम्राट है जिसके भाग्य में भोग करने वाली हर चीज़ है। जिसकी कीर्कित दूर-दूर तक फैली हुई है। आपको राजाओं का राजा कहा जाता है मगर आपके पाँवों में ऐसा कोई चिन्ह मौजूद नहीं है।” राजा को हँसी आ गई और उन्होंने पूछा- “क्या आपका विश्वास अपने ज्ञान तथा विद्या पर से उठ गया?” ज्योतिषी ने जवाब दिया- “बिल्कुल। मुझे अब रक्ती भर भी विश्वास नहीं रहा।” उसने राजा से नम्रतापूर्वक विदा लेते हुए अपने मिल से चलने का इशारा किया। जब वह चलने को हुआ तो राजा ने उसे रुकने को कहा।

दोनों ठिठक कर रुक गए। विक्रम ने एक चाकू मंगवाया तथा पैरों के तलवों को खुरचने लगे। खुरचने पर तलवों की चमड़ी उतर गई और अन्दर से कमल के चिन्ह स्पष्ट हो गए। ज्योतिषी को हतप्रभ देख विक्रम ने कहा- “हे ज्योतिषी महाराज, आपके ज्ञान में कोई कमी नहीं है। लेकिन आपका ज्ञान तब तक अधूरा रहेगा, जब तक आप अपने ज्ञान की ढींगें हँकेंगे और जब-तब उसकी जाँच करते रहेंगे। मैंने आपकी बातें सुन लीं थीं और मैं ही जंगल में लकड़हारे के वेश में आपसे मिला था। मैंने आपकी विदूता की जाँच के लिए अपने पाँवों पर खाल चढ़ा ली थी, ताकि कमल की आकृति ढँक जाए। आपने सब कमल की आकृति नहीं देखी तो आपका विश्वास ही अपनी विद्या से उठ गया। यह अच्छी बात नहीं है।”

ज्योतिषी समझ गया राजा क्या कहना चाहते हैं। उसने तय कर लिया कि वह सच्चे ज्ञान की जाँच के भौंडे तरीकों से बचेगा तथा बड़बोलेपन से परहेज करेगा।

## इक्षीसर्वीं पुतली चन्द्रज्योति

चन्द्रज्योति नामक इक्षीसर्वीं पुतली की कथा इस प्रकार है- एक बार विक्रमादित्य एक यज्ञ करने की तैयारी कर रहे थे। वे उस यज्ञ में चन्द्र देव को आमन्त्रित करना चाहते थे। चन्द्रदेव को आमन्त्रण देने कौन जाए- इस पर विचार करने लगे। काफी सोच विचार के बाद, उन्हें लगा कि महामंत्री ही इस कार्य के लिए सर्वोत्तम रहेंगे। उन्होंने महामंत्री को बुलाकर उनसे विमर्श करना शुरू किया। तभी महामंत्री के घर का एक नौकर वहाँ आकर खड़ा हो गया। महामंत्री ने उसे देखा तो समझ गए कि अवश्य कोई बहुत ही गंभीर बात है अन्यथा वह नौकर उसके पास नहीं आता। उन्होंने राजा से क्षमा मांगी और नौकर से अलग जाकर कुछ पूछा। जब नौकर ने कुछ बताया तो उनका चेहरा उतर गया और वे राजा से विदा लेकर वहाँ से चले गए।

महामंत्री के अचानक दुखी और चिन्तित होकर चले जाने पर राजा को लगा कि अवश्य ही महामंत्री को कोई कष्ट है। उन्होंने नौकर से उनके इस तरह जाने का कारण पूछा तो नौकर हिचकिचाया। जब राजा ने आदेश दिया तो वह हाथ जोड़कर बोला कि महामंत्री जी ने मुझे आपसे सच्चाई नहीं बताने को कहा था। उन्होंने कहा था कि सच्चाई जानने के बाद राजा का ध्यान बँट जाएगा और जो यज्ञ होने वाला है उसमें व्यवधान होगा। राजा ने कहा कि महामंत्री उनके बड़े ही स्वामिभक्त सेवक हैं और उनका भी कर्तव्य है कि उनके कष्ट का हर संभव निवारण करें।

तब नौकर ने बताया कि महामंत्री जी की एकमात्र पुत्री बहुत लम्बे समय से बीमार है। उन्होंने उसकी बीमारी एक से बढ़कर एक वैद्य को दिखाई, पर कोई भी चिकित्सा कारगर नहीं साबित हुई। दुनिया की हर औषधि उसे दी गई, पर उसकी हालत बिगड़ती ही चली गई। अब उसकी हालत इतनी खराब हो चुकी है कि वह हिल-डुल नहीं सकती और मरणासन्न हो गई है।

विक्रमादित्य ने जब यह सुना तो व्याकुल हो गए। उन्होंने राजवैद्य को बुलवाया और जानना चाहा कि उसने महामंत्री की पुत्री की चिकित्सा की है या नहीं। राजवैद्य ने कहा कि उसकी चिकित्सा केवल ख्वांग बूटी से की जा सकती है। दुनिया की अन्य कोई औषधि कारगर नहीं हो सकती। ख्वांग बूटी एक बहुत ही दुर्लभ औषधि है जिसे ढूँढ़कर लाने में कई महीने लग जाएँगे।

राजा विक्रमादित्य ने यह सुनकर कहा- “तुम्हें उस स्थान का पता है जहाँ यह बूटी मिलती है?” राज वैद्य ने बताया कि वह बूटी नीलरत्नगिरि की घाटियों में पाई जाती है लेकिन उस तक पहुँचना बहुत ही कठिन है। रास्ते में भयंकर संप, बिछू तथा हिंसक जानवर भरे बड़े हैं। राजा ने यह सुनकर उससे उस बूटी की पहचान बताने को कहा। राज वैद्य ने बताया कि वह पौधा आधा नीला आधा पीला फूल लिए होता है तथा उसकी पत्तियाँ लाजवन्ती के पत्तों की तरह स्पर्श से सकुचा जाती हैं।

विक्रम यज्ञ की बात भूलकर ख्वांग बूटी की खोज में जाने का निर्णय कर बैठे। उन्होंने तुरन्त काली के दिए गए दोनों बेतालों का स्मरण किया। बेताल उन्हें आनन-फानन में नीलरत्नगिरि की ओर ले चले। पहाड़ी पर उन्हें उतारकर बेताल अदृश्य हो गए। राजा घाटियों की ओर बढ़ने लगे। घाटियों में एकदम अंधेरा था। चारों ओर घने जंगल थे। राजा बढ़ते ही रहे। एकाएक उनके कानों में सिंह की दहाड़ पड़ी। वे सम्भल पाते इसके पहले ही सिंह ने उन पर आक्रमण कर दिया।

राजा ने बिजली जैसी फुर्ती दिखाकर खुद को तो बचा लिया, मगर सिंह उनकी एक बाँह को घायल करने में कामयाब हो गया। सिंह दुबारा जब उन पर झपटा तो उन्होंने भरपूर प्रहार से उसके प्राण ले लिए। उसे मारकर जब वे आगे बढ़े तो रास्ते पर सैकड़ों विषधर दिखे। विक्रम तनिक भी नहीं घबराए और उन्होंने पत्थरों की वर्षा करके साँपों को रास्ते से हटा दिया। उसके बाद वे आगे की ओर बढ़ चले। रास्ते में एक जगह इन्हें लगा कि वे हवा में तैर रहे हैं। ध्यान से देखने पर उन्हें एक दैत्याकार अजगर दिखा। वे समझ गए कि अजगर उन्हें अपना ग्रास बना रहा है। ज्योहि वे अजगर के पेट में पहुँचे कि उन्होंने अपनी तलवार से अजगर का पेट चीर दिया और बाहर आ गए। तब तक गर्मी और थकान से उनका बुरा हाल हो गया। अंधेरा भी घिर आया था। उन्होंने एक वृक्ष पर चढ़कर विश्राम किया। ज्योहि सुबह हुई वे ख्वांग बूटी की खोज में इधर-उधर घूमने लगे। उसकी खोज में इधर-उधर भटकते न जाने कब शाम हो गई और अंधेरा छा गया।

अधीर होकर उन्होंने कहा- “काश, चन्द्रदेव मदद करते!” इतना कहना था कि मानों चमत्कार हो गया। घाटियों में दूध जैसी चाँदनी फैल गई। अन्धकार न जाने कहाँ गायब हो गया। सारी चीज़े ऐसी साफ दिखने लगीं मानो दिन का उजाला हो। थोड़ी दूर बढ़ने पर ही उन्हें ऐसे पौधे की झाड़ी नज़र आई जिस पर आधे नीले आधे पीले फूल लगे थे। उन्होंने पत्तियाँ छूई तो लाजवंती की तरह सकुचा गई। उन्हें संशय नहीं रहा। उन्होंने ख्वांग बूटी का बड़ा-सा हिस्सा काट लिया। वे बूटी लेकर चलने ही वाले थे कि दिन जैसा उजाला हुआ और चन्द्र देव सशरीर उनके सम्मुख आ खड़े हुए। विक्रम ने बड़ी श्रद्धा से उनको प्रणाम किया। चन्द्रदेव ने उन्हें अमृत देते हुए कहा कि अब सिर्फ अमृत ही महामंत्री की पुत्री को जिला सकता है।

उनकी परोपकार की भावना से प्रभावित होकर वे खुद अमृत लेकर उपस्थित हुए हैं। उन्होंने जाते-जाते विक्रम को समझाया कि उनके सशरीर यज्ञ में उपस्थित होने से विश्व के अन्य भागों में अंधकार फैल जाएगा, इसलिए वे उनसे अपने यज्ञ में उपस्थित होने की प्रार्थना नहीं करें। उन्होंने विक्रम को यज्ञ अच्छी तरह सम्पन्न कराने का आशीर्वाद दिया और अन्तर्ध्यान हो गए। विक्रम ख्वांग बूटी और अमृत लेकर उज्जैन आए। उन्होंने अमृत की बून्दें टपकाकर महामंत्री की बेटी को जीवित किया तथा ख्वांग बूटी जनहीत के लिए रख लिया। चारों ओर उनकी जय-जयकार होने लगी।

## बाइसवीं पुतली अनुरोधवती

अनुरोधवती नामक बाइसवीं पुतली ने जो कथा सुनाई वह इस प्रकार है- राजा विक्रमादित्य अद्भुत गुणग्राही थे। वे सच्चे कलाकारों का बहुत अधिक सम्मान करते थे तथा स्पष्टवादिता पसंद करते थे। उनके दरबार में योग्यता का सम्मान किया जाता था। चापलूसी जैसे दुर्गुण की उनके यहाँ कोई कद्र नहीं थी। यही सुनकर एक दिन एक युवक उनसे मिलने उनके द्वारा तक आ पहुँचा। दरबार में महफिल सजी हुई थी और संगीत का दौर चल रहा था। वह युवक द्वार पर राजा की अनुमति का इंतज़ार करने लगा। वह युवक बहुत ही गुणी था। बहुत सारे शास्त्रों का ज्ञाता था। कई राज्यों में नौकरी कर चुका था। स्पष्टवक्ता होने के कारण उसके आश्रयदाताओं को वह धृष्ट नज़र आया, अतः हर जगह उसे नौकरी से निकाल दिया गया।

इतनी ठोकरे खाने के बाद भी उसकी प्रकृति तथा व्यवहार में कोई परिवर्तन नहीं आ सका। वह द्वार पर खड़ा था तभी उसके कान में वादन का स्वर पड़ा और वह बड़बड़ाया- “महफिल में बैठे हुए लोग मूर्ख हैं। संगीत का आनन्द उठा रहे हैं, मगर संगीत का जरा भी ज्ञान नहीं है। साजिन्दा गलत राग बजाए जा रहा है, लेकिन कोई भी उसे मना नहीं कर रहा है।” उसकी बड़बड़ाहट द्वारपाल को स्पष्ट सुनाई पड़ी। उसका चेहरा क्रोध से लाल हो गया। उसने उसको सम्भालकर टिप्पणी करने को कहा। उसने जब उस युवक को कहा कि महाराज विक्रमादित्य खुद महफिल में बैठे हैं और वे बहुत बड़े कला पारखी हैं तो युवक ने उपहास किया। उसने द्वारपाल को कहा कि वे कला प्रेमी हो सकते हैं, मगर कला पारखी नहीं, क्योंकि साजिन्दे का दोषपूर्ण वादन उनकी समझ में नहीं आ रहा है। उस युवक ने यह भी बता दिया कि वह साजिन्दा किस तरफ बैठा हुआ है।

अब द्वारपाल से नहीं रहा गया। उसने उस युवक से कहा कि उसे राजदण्ड मिलेगा, अगर उसकी बात सच साबित नहीं हुई। उस युवक ने उसे सच्चाई का पता लगाने के लिए कहा तथा बड़े ही आत्मविश्वास से कहा कि वह हर दण्ड भुगतने को तैयार है अगर यह बात सच नहीं साबित हुई। द्वारपाल अन्दर गया तथा राजा के कानों तक यह बात पहुँची। विक्रम ने तुरन्त आदेश किया कि वह युवक महफिल में पेश किया जाए। विक्रम के सामने भी उस युवक ने एक दिशा में इशारा करके कहा कि वहाँ एक वादक की ऊँगली दोषपूर्ण है। उस ओर बैठे सारे वादकों की ऊँगलियों का निरीक्षण किया जाने लगा। सचमुच एक वादक के ऊँगूठे का ऊपरी भाग कटा हुआ था और उसने उस ऊँगूठे पर पतली खाल चढ़ा रखी थी।

राजा उस युवक के संगीत ज्ञान के कायल हो गए। तब उन्होंने उस युवक से उसका परिचय प्राप्त किया और अपने दरबार में उचित सम्मान देकर रख लिया। वह युवक सचमुच ही बड़ा ज्ञानी और कला मर्मज्ञ था। उसने समय-समय पर अपनी योग्यता का परिचय देकर राजा का दिल जीत लिया। एक दिन दरबार में एक अत्यंत रूपवती नर्तकी आई। उसके नृत्य का आयोजन हुआ और कुछ ही क्षणों में महफिल सज गई। वह युवक भी दरबारियों के बीच बैठा हुआ नृत्य और संगीत का आनन्द उठाने लगा। वह नर्तकी बहुत ही सधा हुआ नृत्य प्रस्तुत कर रही थी और दर्शक मुग्ध होकर रसास्वादन कर रहे थे। तभी न जाने कहाँ से एक भंवरा आ कर उसके वक्ष पर बैठ गया। नर्तकी नृत्य नहीं रोक सकती थी और न ही अपने हाथों से भंवरे को हटा सकती थी, क्योंकि भंगिमाएँ गड़बड़ हो जातीं। उसने बड़ी चतुरता से साँस अन्दर की ओर खींची तथा पूरे

वेग से भंवरे पर छोड़ दी। अनायास निकले साँस के झाँके से भंवरा डर कर उड़ गया। क्षण भर की इस घटना को कोई भी न ताढ़ सका, मगर उस युवक की आँखों ने सब कुछ देख लिया।

वह “वाह! वाह!” करते उठा और अपने गले की मोतियों की माला उस नर्तकी के गले में डाल दी। सारे दरबारी स्तब्ध रह गए। अनुशासनहीनता की पराकाष्ठा हो गई। राजा की उपस्थिति में दरबार में किसी और के द्वारा कोई पुरस्कार दिया जाना राजा का सबसे बड़ा अपमान माना जाता था। विक्रम को भी यह पसंद नहीं आया और उन्होंने उस युवक को इस धृष्टता के लिए कोई ठोस कारण देने को कहा। तब युवक ने राजा को भंवरे वाली सारी घटना बता दी। उसने कहा कि बिना नृत्य की एक भई भंगिमा को नष्ट किए, लय ताल के साथ सामंजस्य रखते हुए इस नर्तकी ने जिस सफ़ाई से भंवरे को उड़ाया वह पुरस्कार योग्य चेष्टा थी।

उसे छोड़कर किसी और का ध्यान गया ही नहीं तो पुरस्कार कैसे मिलता। विक्रम ने नर्तकी से पूछा तो उसने उस युवक की बातों का समर्थन किया। विक्रम का क्रोध गायब हो गया और उन्होंने नर्तकी तथा उस युवक- दोनों की बहुत तारीफ की। अब उनकी नज़र में उस युवक का महत्व और बढ़ गया। जब भी कोई समाधान ढूँढ़ना रहता उसकी बातों को ध्यान से सुना जाता तथा उसके परामर्श को गंभीरतापूर्वक लिया जाता।

एक बार दरबार में बुद्धि और संस्कार पर चर्चा छिड़ी। दरबारियों का कहना था कि संस्कार बुद्धि से आते हैं, पर वह युवक उनसे सहमत नहीं था। उसका कहना था कि सारे संस्कार वंशानुगत होते हैं। जब कोई मतैक्य नहीं हुआ तो विक्रम ने एक हल सोचा। उन्होंने नगर से दूर हटकर जंगल में एक महल बनवाया तथा महल में गँगी और बहरी नौकरानियाँ नियुक्त कीं। एक-एक करके चार नवाजात शिशुओं को उस महल में उन नौकरानियों की देखरेख में छोड़ दिया गया। उनमें से एक उनका, एक महामंत्री का, एक कोतवाल का तथा एक ब्राह्मण का पुत्र था। बारह वर्ष पश्चात् जब वे चारों दरबार में पेश किए गए तो विक्रम ने बारी-बारी से उनसे पूछा- “कुशल तो है?” चारों ने अलग-अलग जवाब दिए। राजा के पुत्र ने “सब कुशल है” कहा जबकि महामंत्री के पुत्र ने संसार को नश्वर बताते हुए कहा “आने वाले को जाना है तो कुशलता कैसी?” कोतवाल के पुत्र ने कहा कि चोर चोरी करते हैं और बदनामी निरपराध की होती है।

ऐसी हालत में कुशलता की सोचना बेमानी है। सबसे अन्त में ब्राह्मण पुत्र का जवाब था कि आयु जब दिन-ब-दिन घटती जाती है तो कुशलता कैसी। चारों के जवाबों को सुनकर उस युवक की बातों की सच्चाई सामने आ गई। राजा का पुत्र निश्चिन्त भाव से सब कुछ कुशल मानता था और मंत्री के पुत्र ने तर्कपूर्ण उत्तर दिया। इसी तरह कोतवाल के पुत्र ने न्याय व्यवस्था की चर्चा की, जबकि ब्राह्मण पुत्र ने दार्शनिक उत्तर दिया। सब वंशानुगत संस्कारों के कारण हुआ। सबका पालन पोषण एक वातावरण में हुआ, लेकिन सबके विचारों में अपने संस्कारों के अनुसार भिन्नता आ गई। सभी दरबारियों ने मान लिया कि उस युवक का मानना बिल्कुल सही है।

## तेइसवीं पुतली धर्मवती

तेइसवीं पुतली जिसका नाम धर्मवती था, ने इस प्रकार कथा कही- एक बार राजा विक्रमादित्य दरबार में बैठे थे और दरबारियों से बातचीत कर रहे थे। बातचीत के क्रम में दरबारियों में इस बात पर बहस छिड़ गई कि मनुष्य जन्म से बड़ा होता है या कर्म से। बहस का अन्त नहीं हो रहा था, क्योंकि दरबारियों के दो गुट हो चुके थे। एक कहता था कि मनुष्य जन्म से बड़ा होता है क्योंकि मनुष्य का जन्म उसके पूर्वजन्मों का फल होता है। अच्छे संस्कार मनुष्य में वंशानुगत होते हैं जैसे राजा का बेटा राजा हो जाता है। उसका व्यवहार भी राजाओं की तरह रहता है। कुछ दरबारियों का मत था कि कर्म ही प्रधान है। अच्छे कुल में जन्मे व्यक्ति भी दुर्व्यसनों के आदी हो जाते हैं और मर्यादा के विरुद्ध कर्मों में लीन होकर पतन की ओर चले जाते हैं।

अपने दुष्कर्मों और दुराचार के चलते कोई सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं करते और सर्वत तिरस्कार पाते हैं। इस पर पहले गुट ने तर्क दिया कि मूल संस्कार नष्ट नहीं हो सकते हैं जैसे कमल का पौधा कीचड़ में रहकर भी अपने गुण नहीं खोता। गुलाब काँटों पर पैदा होकर भी अपनी सुगन्ध नहीं खोता और चन्दन के वृक्ष पर सर्पों का वास होने से भी चन्दन अपनी सुगन्ध और शीतलता बरकरार रखता है, कभी भी विषेला नहीं होता। दोनों पक्ष अपने-अपने तर्कों द्वारा अपने को सही सिद्ध करने की कोशिश करते रहे। कोई भी अपना विचार बदलने को राजी नहीं था। विक्रम चुपचाप उनकी बहस का मज़ा ले रहे थे। जब उनकी बहस बहुत आगे बढ़ गई तो राजा ने उन्हें शान्त रहने का आदेश दिया और कहा कि वे प्रत्यक्ष उदाहरण द्वारा करेंगे।

उन्होंने आदेश दिया कि जंगल से एक सिंह का बच्चा पकड़कर लाया जाए। तुरन्त कुछ शिकारी जंगल गए और एक सिंह का नवजात शावक उठाकर ले आए। उन्होंने एक गड़ेरिये को बुलाया और उस नवजात शावक को बकरी के बच्चों के साथ-साथ पालने को कहा। गड़ेरिये की समझ में कुछ नहीं आया, लेकिन राजा का आदेश मानकर वह शाषक को ले गया। शावक की परवरिश बकरी के बच्चों के साथ होने लगी। वह भी भूख मिटाने के लिए बकरियों का दूध पीने लगा जब बकरी के बच्चे बड़े हुए तो घास और पत्तियाँ चरने लगे। शावक भी पत्तियाँ बड़े चाव से खाता। कुछ और बड़ा होने पर दूध तो वह पीता रहा, मगर घास और पत्तियाँ चाहकर भी नहीं खा पाता। एक दिन जब विक्रम ने उसे शावक का हाल बताने के लिए बुलाया तो उसने उन्हें बताया कि शेर का बच्चा एकदम बकरियों की तरह व्यवहार करता है।

उसने राजा से विनती की कि उसे शावक को मांस खिलाने की अनुमति दी जाए, क्योंकि शावक को अब घास और पत्तियाँ अच्छी नहीं लगती हैं। विक्रम ने साफ़ मना कर दिया और कहा कि सिर्फ दूध पर उसका पालन पोषण किया जाए। गड़ेरिया उलझन में पड़ गया। उसकी समझ में नहीं आया कि महाराज एक मांसभक्षी प्राणी को शाकाहारी बनाने पर क्यों तुले हैं। वह घर लौट आया। शावक जो कि अब जवान होने लगा था सारा दिन बकरियों के साथ रहता और दूध पीता। कभी-कभी बहुत अधिक भूख लगने पर घास-पत्तियाँ भी खा लेता। अन्य बकरियों की तरह जब शाम में उसे दरबे की तरफ हाँका

जाता तो चुपचाप सर झुकाए बढ़ जाता तथा बन्द होने पर कोई प्रतिरोध नहीं करता। एक दिन जब वह अन्य बकरियों के साथ चर रहा था तो पिंजरे में बन्द एक सिंह को लाया गया। सिंह को देखते ही सारी बकरियाँ डरकर भागने लगीं तो वह भी उनके साथ दुम दबाकर भाग गया। उसके बाद राजा ने गड़ेरियें को उसे स्वतंत्र रूप से रखने को कहा। भूख लगने पर उसने खरगोश का शिकार किया और अपनी भूख मिटाई।

कुछ दिन स्वतंत्र रूप से रहने पर वह छोटे-छोटे जानवरों को मारकर खाने लगा। लेकिन गड़ेरिये के कहने पर पिंजरे में शान्तिपूर्वक बन्द हो जाता। कुछ दिनों बाद उसका बकरियों की तरह भीरु स्वभाव जाता रहा। एक दिन जब फिर से उसी शेर को जब उसके सामने लाया गया तो वह डरकर नहीं भागा। शेर की दहाड़ उसने सुनी तो वह भी पूरे स्वर से दहाड़। राजा अपने दरबारियों के साथ सब कुछ गौर से देख रहे थे। उन्होंने दरबारियों को कहा कि इन्सान में मूल प्रवृत्तियाँ शेर के बच्चे की तरह ही जन्म से होती हैं। अवसर पाकर वे प्रवृत्तियाँ स्वतः उजागर हो जाती हैं जैसे कि इस शावक के साथ हुआ। बकरियों के साथ रहते हुए उसकी सिंह वाली प्रवृत्ति छिप गई थी, मगर स्वतंत्र रूप से विचरण करने पर अपने-आप प्रकट हो गई। उसे यह सब किसी ने नहीं सिखाया। लेकिन मनुष्य का सम्मान कर्म के अनुसार किया जाना चाहिए।

सभी सहमत हो गए, मगर एक मन्त्री राजा की बातों से सहमत नहीं हुआ। उसका मानना था कि विक्रम राजकुल में पैदा होने के कारण ही राजा हुए अन्यथा सात जन्मों तक कर्म करने के बाद भी राजा नहीं होते। राजा मुस्कराकर रह गए। समय बीतता रहा। एक दिन उनके दरबार में एक नाविक सुन्दर फूल लेकर उपस्थित हुआ। फूल सचमुच विलक्षण था और लोगों ने पहली बार इतना सुन्दर लाल फूल देखा था। राजा फूल के उद्धम स्थल का पता लगाने भेज दिया। वे दोनों उस दिशा में नाव से बढ़ते गए जिधर से फूल बहकर आया था। नदी की धारा कहीं अत्यधिक सँकरी और तीव्र हो जाती थी, कहीं चट्ठानों के ऊपर से बहती थी। काफी दुर्गम रास्ता था। बहते-बहते नाव उस जगह पहुँची जहाँ किनारे पर एक अद्भुत दृश्य था।

एक बड़े पेड़ पर जंजीरों की रगड़ से उसके शरीर पर कई गहरे घाव बन गए थे। उन घावों से रक्त चू रहा था जो नदी में गिरते ही रक्तवर्ण पुष्पों में बदल जाता था। कुछ दूरी पर ही कुछ साधु बैठे तपस्या में लीन थे। जब वे कुछ और फूल लेकर दरबार में वापस लौटे तो मंत्री ने राजा को सब कुछ बताया। तब विक्रम ने उसे समझाया कि उस उलटे लटके योगी को राजा समझो और अन्य साधनारत सन्यासी उसके दरबारी हुए। पूर्वजन्म का यह कर्म उन्हें राजा या दरबारी बनाता है। अब मन्त्री को राजा की बात समझ में आ गई। उसने मान लिया कि पूर्वजन्म के कर्म के फल के रूप में ही किसी को राजगद्दी मिलती है।

## चौबीसवीं पुतली करुणावती

चौबीसवीं पुतली करुणावती ने जो कथा कही वह इस प्रकार है- राजा विक्रमादित्य का सारा समय ही अपनी प्रजा के दुखों का निवारण करने में बीतता था। प्रजा की किसी भी समस्या को वे अनदेखा नहीं करते थे। सारी समस्याओं की जानकारी उन्हें रहे, इसलिए वे भेष बदलकर रात में पूरे राज्य में, आज किसी हिस्से में, कल किसी और में घूमा करते थे। उनकी इस आदत का पता चोर-डाकुओं को भी था, इसलिए अपराध की घटनाएँ छिट-पुट ही हुआ करती थीं। विक्रम चाहते थे कि अपराध बिल्कुल मिट जाए ताकि लोग निर्भय होकर एक स्थान से दूसरे स्थान की यात्रा करें तथा चैन की नींद सो सकें। ऐसे ही विक्रम एक रात वेश बदलकर राज्य के एक हिस्से में घूम रहे थे कि उन्हें एक बड़े भवन से लटकता एक कमन्द नज़र आया। इस कमन्द के सहारे ज़रूर कोई चोर ही ऊपर की मंज़िल तक गया होगा, यह सोचकर वे कमन्द के सहारे ऊपर पहुँचे।

उन्होंने अपनी तलवार हाथों में ले ली ताकि सामना होने पर चोर को मौत के घाट उतार सकें। तभी उनके कानों में स्त्री की धीमी आवाज़ पड़ी “तो चोर कोई स्त्री है”, यह सोचकर वे उस कमरे की दीवार से सटकर खड़े हो गए जहाँ से आवाज़ आ रही थी। कोई स्त्री किसी से बगल वाले कमरे में जाकर किसी का वध करने को कह रही थी। उसका कहना था कि बिना उस आदमी का वध किए हुए किसी अन्य के साथ उसका सम्बन्ध रखना असम्भव है। तभी एक पुरुष स्वर बोला कि वह लुटेरा अवश्य है, मगर किसी निरपराध व्यक्ति की जान लेना उसके लिए सम्भव नहीं है। वह स्त्री को अपने साथ किसी सुदूर स्थान जाने के लिए कह रहा था और उसके विश्वास दिलाने की कोशिश कर रहा था कि उसके पास इतना अधिक धन है कि बाकी बची ज़िन्दगी वे दोनों आराम से बसर कर लेंगे। वह स्त्री अन्त में उससे दूसरे दिन आने के लिए बोली, क्योंकि उसे धन बटोरने में कम से कम चौबीस धंटे लग जाते।

राजा समझ गए कि पुरुष उस स्त्री का प्रेमी है तथा स्त्री उस सेठ की पत्नी है जिसका यह भवन है। सेठ बगल वाले कमरे में सो रहा है और सेठानी उसके वध के लिए अपने प्रेमी को उकसा रही थी। राजा कमन्द पकड़कर नीचे आ गए और उस प्रेमी का इन्तज़ार करने लगे। थोड़ी देर बाद सेठानी का प्रेमी कमन्द से नीचे आया तो राजा ने अपनी तलवार उसकी गर्दन पर रख दी तथा उसे बता दिया कि उसके सामने विक्रम खड़े हैं। वह आदमी डर से थर-थर काँपने लगा और प्राण दण्ड के भय से उसकी घिछ्ही बँध गई। जब राजा ने उसे सच बताने पर मृत्यु दण्ड न देने का वायदा किया तो उसने अपनी कहानी इस प्रकार बताई-

“मैं बचपन से ही उससे प्रेम करता था तथा उसके साथ विवाह के सपने संजोए हुए था। मेरे पास भी बहुत सारा धन था क्योंकि मेरे पिता एक बहुत ही बड़े व्यापारी थे। लेकिन मेरे सुखी भविष्य के सारे सपने धरे-के-धरे रह गए। एक दिन मेरे पिताजी का धन से भरा जहाज समुद्री डाकुओं ने लूट लिया। लूट की खबर पाते ही मेरे पिताजी के दिल को ऐसा धक्का लगा कि उनके प्राण निकल गए। हम लोग कंगाल हो गए। मैं अपनी तबाही का कारण उन समुद्री डाकुओं को मानकर उनसे

बदला लेने निकल पड़ा। कई वर्षों तक ठोकर खाने के बाद मुझे उनका पता चल ही गया। मैंने बहुत मुश्किल से उनका विश्वास जीता तथा उनके दल में शामिल हो गया। अवसर पाते ही मैं किसी एक का वध कर देता। एक-एक करके मैंने पूरे दल का सफाया कर दिया और लूट से जो धन उन्होंने एकत्र किया था वह लेकर अपने घर वापस चला आया।

घर आकर मुझे पता चला कि एक धनी सेठ से मेरी प्रेमिका का विवाह हो गया और वह अपने पति के साथ चली गई। मेरे सारे सपने बिखर गए। एक दिन उसके मायके आने की खबर मुझे मिली तो मैं खुश हो गया। वह आकर मुझसे मिलने लगी और मैंने सारा वृतान्त उसे बता दिया। एक दिन वह मुझसे मिली तो उसने कहा कि उसे मेरे पास बहुत सारा धन होने की बात पर तभी विश्वास होगा जब मैं नौलखा हार उसके गले में डाल दूँ। मैं नौलखा हार लेकर गया। तब तक वह पति के पास चली गई थी। मैंने नौलखा हार लाकर उसे पति के घर में पहना दिया तो उसने अपने पति की हत्या करने को मुझे उकसाया। मैंने उसका कहने नहीं माना क्योंकि किसी निरपराध की हत्या अपने हाथों से करना मैं भयानक पाप समझता हूँ।”

राजा विक्रमादित्य ने सच बोलने के लिए उसकी तारीफ की और समुद्री डाकुओं का सफाया करने के लिए उसका कंधा थपथपाया। उन्होंने उसे लिया चरित नहीं समझ पाने कि लिए डाँठ। उन्होंने कहा कि सच्ची प्रेमिकाएँ प्रेमी से प्रेम करती हैं उसके धन से नहीं। उसकी प्रेमिका ने उसकी प्रतीक्षा नहीं की और सम्पन्न व्यक्ति से शादी कर ली। दुबारा उससे भेंट होने पर पति से द्रोह करने से नहीं हिचकिचाई। नौलखा हार प्राप्त कर लेने के बाद भी उसका विश्वास करके उसके साथ चलने को तैयार नहीं हुई। उलटे उसके मना करने पर भी उससे निरपराध पति की हत्या करवाने को तैयार बैठी है। ऐसी निष्टुर तथा चरित्रहीन स्त्री से प्रेम सिर्फ विनाश की ओर ले जाएगा।

वह आदमी रोता हुआ राजा के चरणों में गिर पड़ा तथा अपना अपराध क्षमा करने के लिए प्रार्थना करने लगा। राजा ने मृत्युदण्ड के बदले उसे वीरता और सत्यवादिता के लिए ढेरों पुरस्कार दिए। उस आदमी की आँखें खुल चुकी थीं।

दूसरे दिन रात को उस प्रेमी का भेष धरकर वे कमन्द के सहारे उसकी प्रेमिका के पास पहुँचे। उनके पहुँचते ही उस स्त्री ने स्वर्णाभूषणों की बड़ी सी थैली उन्हें अपना प्रेमी समझकर पकड़ा दी और बोली कि उसने विष खिलाकर सेठ को मार दिया और सारे स्वर्णाभूषण और हीरे जवाहरात चुनकर इस थैली में भर लिए। जब राजा कुछ नहीं बोले तो उसे शक हुआ और उसने नकली दाढ़ी-मूँछ नोच ली। किसी अन्य पुरुष को पाकर “चोर-चोर” चिल्लाने लगी तथा राजा को अपने पति का हत्यारा बताकर विलाप करने लगी। राजा के सिपाही और नगर कोतवाल नीचे छिपे हुए थे। वे दौड़कर आए और राजा के आदेश पर उस हत्यारी चरित्रहीन स्त्री को गिरफ्तार कर लिया गया। उस स्त्री को समझते देर नहीं लगी कि भेष बदलकर आधा हुआ पुरुष खुद विक्रम थे। उसने झट से विष की शीशी निकाली और विषपान कर लिया।

## पच्चीसवाँ पुतली लिनेत्री

लिनेत्री नामक पच्चीसवाँ पुतली की कथा इस प्रकार है- राजा विक्रमादित्य अपनी प्रजा के सुख दुख का पता लगाने के लिए कभी-कभी वेश बदलकर धूमा करते थे तथा खुद सारी समस्या का पता लगाकर निदान करते थे।

उनके राज्य में एक दरिद्र ब्राह्मण और भाट रहते थे। वे दोनों अपना कष्ट अपने तक ही सीमित रखते हुए जीवन-यापन कर रहे थे तथा कभी किसी के प्रति कोई शिकायत नहीं रखते थे। वे अपनी गरीबी को अपना प्रारब्ध समझकर सदा खुश रहते थे तथा सीमित आय से संतुष्ट थे।

सब कुछ ठीक-ठाक चल रहा था, मगर जब भाट की बेटी विवाह योग्य हुई तो भाट की पत्नी को उसके विवाह की चिन्ता सताने लगी। उसने अपने पति से कहा कि वह पुश्तैनी पेशे से जो कमाकर लाता है उससे दैनिक खर्च तो आराम से चल जाता है, मगर बेटी के विवाह के लिए कुछ भी नहीं बच पाता है। बेटी के विवाह में बहुत खर्च आता है, अतः उसे कोई और यत्न करना होगा।

भाट यह सुनकर हँस पड़ा और कहने लगा कि बेटी उसे भगवान की इच्छा से प्राप्त हुई है, इसलिए उसके विवाह के लिए भगवान कोई रास्ता निकाल ही देंगे। अगर ऐसा नहीं होता तो हर दम्पत्ति को केवल पुल की ही प्राप्ति होती या कोई दम्पति संतानहीन न रहते। सब ईश्वर की इच्छा से ही होता है। दिन बीतते गए, पर भाट को बेटी के विवाह में खर्च लायक धन नहीं मिल सका। उसकी पत्नी अब दुखी रहने लगी। भाट से उसका दुख नहीं देखा गया तो वह एक दिन धन इकट्ठा करने की नीयत से निकल पड़ा। कई राज्यों का भ्रमण कर उसने सैकड़ों राज्याधिकारियों तथा बड़े-बड़े सेठों को हँसाकर उनका मनोरंजन किया तथा उनकी प्रशंसा में गीत गाए। खुश होकर उन लोगों ने जो पुरस्कार दिए उससे बेटी के विवाह लायक धन हो गया। जब वह सारा धन लेकर लौट रहा था तो रास्ते में न जाने चोरों को कैसे उसके धन की भनक लग गई। उन्होंने सारा धन लूट लिया। अब तो भाट का विश्वास भगवान पर और चाहेंगे उसके पास बेटी के व्याह के लिए धन नहीं होगा। वह जब लौटकर घर आया तो उसकी पत्नी को आशा थी कि वह व्याह के लिए उचित धन लाया होगा।

भाट की पत्नी को बताया कि उसके बार-बार कहने पर वह विवाह के लिए धन अर्जित करने को कई प्रदेश गया और तरह-तरह को लोगों से मिला। लोगों से पर्याप्त धन भी एकत्र कर लाया पर भगवान को उस धन से उसकी बेटी का विवाह होना मंजूर नहीं था। रास्ते में सारा धन लुटेरों ने लूट लिया और किसी तरह प्राण बचाकर वह वापस लौट आया है। भाट की पत्नी गहरी चिन्ता में डूब गई। उसने पति से पूछा कि अब बेटी का व्याह कैसे होगा। भाट ने फिर अपनी बात दुहराई कि जिसने बेटी दी है वही ईश्वर उसके विवाह की व्यवस्था भी कर देगा। इस पर उसकी पत्नी निराशा भरी खीझ के साथ बोली कि ईश्वर लगता है महाराजा विक्रम को विवाह की

व्यवस्था करने भेजेंगे। जब यह वार्तालाप हो रहा था तभी महाराज उसके घर के पास से गुज़र रहे थे। उन्हें भाट की पत्नी की टिप्पणी पर हँसी आ गई।

दूसरी तरफ ब्राह्मण अपनी आजीविका के लिए पुश्टैनी पेशा अपनाकर जैसे-तैसे गुज़र-बसर कर रहा था। वह पूजा-पाठ करवाकर जो कुछ भी दक्षिणा के रूप में प्राप्त करता उसी से आनन्दपूर्वक निर्वाह कर रहा था। ब्राह्मणी को भी तब तक सब कुछ सामान्य दिख पड़ा जब तक कि उनकी बेटी विवाह योग्य नहीं हुई। बेटी के विवाह की चिन्ता जब सताने लगी तो उसने ब्राह्मण को कुछ धन जमा करने को कहा। मगर ब्राह्मण चाहकर भी नहीं कर पाया। पत्नी के बार-बार याद दिलाने पर उसने अपने यजमानों को घुमा फिरा कर कहा भी, मगर किसी यजमान ने उसकी बात को गंभीरतापूर्वक नहीं लिया। एक दिन ब्राह्मणी तंग आकर बोली कि विवाह खर्च महाराजा विक्रमादित्य से मांगकर देखो, क्योंकि अब और कोई विकल्प नहीं है। कन्यादान तो करना ही है। ब्राह्मण ने कहा कि वह महाराज के पास ज़रुर जाएगा। महाराज धन दान करेंगे तो सारी व्यवस्था हो जाएगी। उसकी भी पत्नी के साथ पूरी बातचीत विक्रम ने सुन ली, क्योंकि उसी समय वे उसके घर के पास गुज़र रहे थे।

सुबह में उन्होंने सिपाहियों को भेजा और भाट तथा ब्राह्मण दोनों को दरबार में बुलवाया। विक्रमादित्य ने अपने हाथों से भाट को दस लाख स्वर्ण मुद्राएँ दान की। फिर ब्राह्मण को राजकोष से कुछ सौ मुद्राएँ दिलवा दी। वे दोनों अति प्रसन्न हो वहाँ से विदा हो गए। जब वे चले गए तो एक दरबारी ने महाराज से कुछ कहने की अनुमति मांगी। उसने जिज्ञासा की कि भाट और ब्राह्मण दोनों कन्या दान के लिए धन चाहते थे तो महाराज ने पक्षपात क्यों किया। भाट को दस लाख और ब्राह्मण को सिर्फ कुछ सौ स्वर्ण मुद्राएँ क्यों दी। विक्रम ने जवाब दिया कि भाट धन के लिए उनके आसरे पर नहीं बैठा था। वह ईश्वर से आस लगाये बैठा था। ईश्वर लोगों को कुछ भी दे सकते हैं, इसलिए उन्होंने उसे ईश्वर का प्रतिनिधि बनकर अप्रत्याशित दान दिया, जबकि ब्राह्मण कुलीन वंश का होते हुए भी ईश्वर में पूरी आस्था नहीं रखता था। वह उनसे सहायता की अपेक्षा रखता था। राजा भी आ मनुष्य है, ईश्वर का स्थान नहीं ले सकता। उन्होंने उसे उतना ही धन दिया जितने में विवाह अच्छी तरह संपन्न हो जाए। राजा का ऐसा गूढ़ उत्तर सुनकर दरबारी ने मन ही मन उनकी प्रशंसा की तथा चुप हो गया।

## छब्बीसवीं पुतली मृगनयनी

मृगनयनी नामक छब्बीसवीं पुतली ने जो कथा सुनाई वह इस प्रकार है- राजा विक्रमादित्य न सिर्फ अपना राजकाज पूरे मनोयोग से चलाते थे, बल्कि त्याग, दानवीरता, दया, वीरता इत्यादि अनेक श्रेष्ठ गुणों के धनी थे। वे किसी तपस्वी की भाँति अन्न-जल का त्याग कर लम्बे समय तक तपस्या में लीन रहे सकते थे। ऐसा कठोर तप कर सकते थे कि इन्द्रासन डोल जाए।

एक बार उनके दरबार में एक साधारण सी वेशभूषा वाले एक युवक को पकड़कर उनके सैनिक लाए। वह रात में बहुत सारे धन के साथ संदिग्ध अवस्था में कहीं जा रहा था। उसकी वेशभूषा से नहीं लग रहा था कि इस धन का वह मालिक होगा, इसलिए सिपाहियों को लगा शायद वह चोर हो और चोरी के धन के साथ कहीं चंपत होने की फिराक में हो। राजा ने जब उस युवक से उसका परिचय पूछा और जानना चाहा कि यह धन उसके पास कैसे आया तो उस युवक ने बताया कि वह एक धनार्थी सी के यहाँ नौकर है और सारा धन उसी सी का दिया हुआ है। अब राजा की जिज्ञासा बढ़ गई और उन्होंने जानना चाहा कि उस सी ने उसे यह धन क्यों दिया और वह धन लेकर कहाँ जा रहा था। इस पर वह युवक बोला कि अमुक जगह रुक कर सी ने प्रतीक्षा करने को कहा था। दरअसल उस सी के उससे अनैतिक सम्बन्ध हैं और वह उससे पति की हत्या करके आकर मिलनेवाली थी।

दोनों सारा धन लेकर कहीं दूर चले जाते और आराम से जीवन व्यतीत करते। विक्रम ने उसकी बातों की सत्यता की जाँच करने के लिए तुरन्त उसके बताये पते पर अपने सिपाहियों को भेजा। सिपाहियों ने आकर खबर दी कि उस सी को अपने नौकर के गिरफ्तार होने की सूचना मिल चुकी है। अब वह विलाप करके कह रही है कि लुटेरों ने सारा धन लूट लिया और उसके पति की हत्या करके भाग गए। उसने पति की चिंता सजवाई है और खुद को पतिव्रता साबित करने के लिए सती होने की योजना बना रही है। सुबह युवक को साथ लेकर सिपाहियों के साथ विक्रम उस सी के घर पहुँचे तो दृश्य देखकर सचमुच चौंक गए। सी अपने पति की चिता पर बैठ चुकी थी और चिता को अग्नि लगने वाली थी। राजा ने चिता को अग्नि देने वाले को रोक दिया तथा उस सी से चिता से उतरने को कहा। उन्होंने सारा धन उसे दिखाया तथा नौकर को आगे लाकर बोले कि सारी सच्चाई का पता उन्हें चल गया है। उन्होंने उस सी को लिया चरित्र का त्याग करने को कहा तथा राजदण्ड भुगतने को तैयार हो जाने की आज्ञा दी।

सी कुछ क्षणों के लिए तो भयभीत हुई, मगर दूसरे ही पल बोली कि राजा को उसके चरित्र पर ऊँगली उठाने के पहले अपनी छोटी रानी के चरित्र की जाँच करनी चाहिए। इतना कहकर वह बिजली सी फुर्ती से चिता पर कूदी और उसमें आग लगाकर सती हो गई। कोई कुछ करता वह सी जलकर राख हो गई। राजा सिपाहियों सहित अपने महल वापस लौट गए। उन्हें उस सी के अंतिम शब्द अभी तक जला रहे थे। उन्होंने छोटी रानी पर निगाह रखनी शुरू कर दी। एक रात उन्हें सोता समझकर छोटी रानी उठी और पिछले दरवाजे से महल से बाहर निकल गई। राजा भी दबे पाँव उसका पीछा करने लगे।

चलकर वह कुछ दूर पर धूनी रमाए एक साधु के पास गई। साधु ने उसे देखा तो उठ गया और उसे लेकर पास बनी एक कुटिया के अन्दर दोनों चले गए। विक्रम ने कुटिया में जो देखा वह उनके लिए असहनीय था। रानी निर्वस्त होकर उस साधु का आलिंगन करने लगी तथा दोनों पति-पत्नी की तरह बेझिझक संभोगरत हो गए। राजा ने सोचा कि छोटी रानी को वे इतना प्यार करते हैं फिर भी वह विश्वासघात कर रही है। उनका क्रोध सीमा पार कर गया और उन्होंने कुटिया में घुसकर उस साधु तथा छोटी रानी को मौत के घाट उतार दिया।

जब वे महल लौटे तो उनकी मानसिक शांति जा चुकी थी। वे हमेशा बेचैन तथा खिन्न रहने लगे। सांसारिक सुखों से उनका मन उचाट हो गया तथा मन में वैराग्य की भावना ने जन्म ले लिया। उन्हें लगता था कि उनके धर्म-कर्म में ज़रूर कोई कमी थी जिसके कारण भगवान ने उन्हें छोटी रानी के विश्वासघात का दृश्य दिखाकर दण्डित किया। यही सब सोचकर उन्होंने राज-पाट का भार अपने मंत्रियों को सौंप दिया और खुद समुद्र तट पर तपस्या करने को चल पड़े। समुद्र तट पर पहुँचकर उन्होंने सबसे पहले एक पैर पर खड़े होकर समुद्र देवता का आह्वान किया। उनकी साधना से प्रसन्न होकर जब समुद्र देवता ने उन्हें दर्शन दिए तो उन्होंने समुद्र देवता से एक छोटी सी मांग पूरी करने की विनती की। उन्होंने कहा कि उनके तट पर वे एक कुटिया बनाकर अखण्ड साधना करना चाहते हैं और अपनी साधना निर्विघ्न पूरा करने का उनसे आशीर्वाद चाहते हैं।

समुद्र देवता ने उन्हें अपना आशीर्वाद दिया तथा उन्हें एक शंख प्रदान किया। समुद्र देवता ने कहा कि जब भी कोई दैवीय विपत्ति आएगी इस शंख की ध्वनि से दूर हो जाएगा। समुद्र देव से उपहार लेकर विक्रम ने उन्हें धन्यवाद दिया तथा प्रणाम कर समुद्र तट पर लौट आए। उन्होंने समुद्र तट पर एक कुटिया बनाई और साधना करने लगे। उन्होंने लम्बे समय तक इतनी कठिन साधना की कि देव लोक में हड़कम्प सच गया। सारे देवता बात करने लगे कि अगर विक्रम इसी प्रकार साधना में लीन रहे तो इन्द्र के सिंहासन पर अधिकार कर लेंगे। इन्द्र को अपना सिंहासन खतरे में दिखाई देने लगा। उन्होंने अपने सहयोगियों को साधना स्थल के पास इतनी अधिक वृष्टि करने का आदेश दिया कि पूरा स्थान जलमग्न हो जाए और विक्रम कुटिया सहित पानी में बह जाएँ। बस आदेश की देर थी। बहुत भयानक वृष्टि शुरू हो गई। कुछ ही घण्टों में सचमुच सारा स्थान जलमग्न हो जाता और विक्रम कुटिया सहित जल में समा गए होते।

लेकिन समुद्र देव ने उन्हें आशीर्वाद जो दिया था। उस वर्षा का सारा पानी उन्होंने पी लिया तथा साधना स्थल पहले की भाँति सूखा ही रहा। इन्द्र ने जब यह अद्भुत चमत्कार देखा तो उनकी चिन्ता और बढ़ गई। उन्होंने अपने सेवकों को बुलाकर आँधी-तूफान का सहारा लेने का आदेश दिया। इतने भयानक वेग से आँधी चली कि कुटिया तिनके-तिनके होकर बिखर गई। सब कुछ हवा में रुई की भाँति उड़ने लगा। बड़े-बड़े वृक्ष उखड़कर गिरने लगे। विक्रम के पाँव भी उखड़ते हुए मालूम पड़े। लगा कि आँधी उन्हें उड़ाकर साधना स्थल से बहुत दूर फेंक देगी। विक्रम को समुद्र देव द्वारा दिया गया शंख याद आया और उन्होंने शंख को ज़ोर से फूंका। शंख से बड़ी तीव्र ध्वनि निकली। शंख ध्वनि के साथ आँधी-तूफान का पता नहीं रहा। वहाँ ऐसी शान्ति छा गई मानो कभी आँधी आई ही न हो। अब तो इन्द्र देव की चिन्ता और अधिक बढ़ गई।

उन्हें सूझ नहीं रहा था कि विक्रम की साधना कैसे भंग की जाए। अब विक्रम की साधना को केवल अप्सराओं का आकर्षण ही भंग कर सकता था। उन्होंने तिलोत्तमा नामक अप्सरा को बुलाया तथा उसे जाकर विक्रम की साधना भंग करने को कहा। तिलोत्तमा अनुपम सुन्दरी थी और उसका रूप देखकर कोई भी कामदेव के वाणों से घायल हुए बिना नहीं रह सकता था। तिलोत्तमा साधना स्थल पर उतरी तथा मनमोहक गायन-वादन और नृत्य द्वारा विक्रम की साधना में विघ्न डालने की चेष्टा करने लगी। मगर वैरागी विक्रम का क्या बिगाढ़ पाती। विक्रम ने शंख को फूँक मारी और तिलोत्तमा को ऐसा लगा जैसे किसी ने उसे आग की ज्वाला में ला पटका हो। भयानक ताप से वह उद्धिग्र हो उठी तथा वहाँ से उसी क्षण अदृश्य हो गई। जब यह युक्ति भी कारगर नहीं हुई तो इन्द्र का आत्मविश्वास पूरी तरह डोल गया। उन्होंने खुद ब्राह्मण का वेश धरा और साधना स्थल आए। वे जानते थे कि विक्रम याचको को कभी निराश नहीं करते हैं तथा सामर्थ्यानुसार दान देते हैं। जब इन्द्र विक्रम के पास वे पहुँचे तो विक्रम ने उनके आने का प्रयोजन पूछा।

उन्होंने विक्रम से भिक्षा देने को कहा तथा भिक्षा के रूप में उनकी कठिन साधना का सारा फल मांग लिया। विक्रम ने अपनी साधना का सारा फल उन्हें सहर्ष दान कर दिया। साधना फल दान क्या था- इन्द्र को अभयदान मिल गया। उन्होंने प्रकट होकर विक्रम की महानता का गुणगान किया और आशीर्वाद दिया। उन्होंने कहा कि विक्रम के राज्य में अतिवृष्टि और अनावृष्टि नहीं होगी। कभी अकाल या सूखा नहीं पड़ेगा सारी फसलें समय पर और भरपूर होंगी। इतना कहकर इन्द्र अन्तऽध्यान हो गए।

## सताइसवीं पुतली मलयवती

मलयवती नाम की सताइसवीं पुतली ने जो कथा सुनाई वह इस प्रकार है- विक्रमादित्य बड़े यशस्वी और प्रतापी राजा था और राज-काज चलाने में उनका कोई मानी था। वीरता और विद्वता का अद्भुत संगम थे। उनके शास्त्रज्ञान और शास्त्रज्ञान की कोई सीमा नहीं थी। वे राज-काज से बचा समय अकसर शास्त्रों के अध्ययन में लगाते थे और इसी ध्येय से उन्होंने राजमहल के एक हिस्से में विशाल पुस्तकालय बनवा रखा था। वे एक दिन एक धार्मिक ग्रन्थ पढ़ रहे थे तो उन्हें एक जगह राजा बलि का प्रसंग मिला। उन्होंने राजा बलि वाला सारा प्रसंग पढ़ा तो पता चला कि राजा बलि बड़े दानवीर और वचन के पक्षे थे। वे इतने पराक्रमी और महान राजा थे कि इन्द्र उनकी शक्ति से डर गए। देवताओं ने भगवान विष्णु से प्रार्थना की कि वे बलि का कुछ उपाय करें तो विष्णु ने वामन रूप धरा। वामन रूप धरकर उनसे सब कुछ दान में प्राप्त कर लिया और उन्हें पाताल लोक जाने को विवश कर दिया।

जब उनकी कथा विक्रम ने पढ़ी तो सोचा कि इतने बड़े दानवीर के दर्शन ज़रूर करने चाहिए। उन्होंने विचार किया कि भगवान विष्णु की आराधना करके उन्हें प्रसन्न किया जाए तथा उनसे दैत्यराज बलि से मिलने का मार्ग पूछा जाए। ऐसा विचार मन में आते ही उन्होंने राज-पाट और मोह-माया से अपने आपको अलग कर लिया तथा महामन्त्री को राजभार सौंपकर जंगल की ओर प्रस्थान कर गए। जंगल में उन्होंने घोर तपस्या शुरू की और भगवान विष्णु की स्तुति करने लगे। उनकी तपस्या बहुत लम्बी थी। शुरू में वे केवल एक समय का भोजन करते थे। कुछ दिनों बाद उन्होंने वह भी त्याग दिया तथा फल और कन्द-मूल आदि खाकर रहने लगे। कुछ दिनों बाद सब कुछ त्याग दिया और केवल पानी पीकर तपस्या करते रहे। इतनी कठोर तपस्या से वे बहुत कमज़ोर हो गए और साधारण रूप से उठने-बैठने में भी उन्हें काफी मुश्किल होने लगी। धीरे-धीरे उनके तपस्या स्थल के पास और भी बहुत सारे तपस्वी आ गए। कोई एक पैर पर खड़ा होकर तपस्या करने लगा तो कोई एक हाथ उठाकर, कोई काँटों पर लेटकर तपस्या में लीन हो गया तो कोई गरदन तक बालू में धूँसकर। चारों ओर सिर्फ ईश्वर के नाम की चर्चा होने लगी और पवित्र वातावरण तैयार हो गया।

विक्रम ने कुछ समय बाद जल भी लेना छोड़ दिया और बिलकुल निराहार तपस्या करने लगे। अब उनका शरीर और भी कमज़ोर हो गया और सिर्फ हड्डियों का ढाँचा न आने लगा। कोई देखता तो दया आ जाती, मगर राजा विक्रमादित्य को कोई चिन्ता नहीं थी। विष्णु की आराधना करते-करते यदि उनके प्राण निकल जाते तो सीधे स्वर्ग जाते और यदि विष्णु के दर्शन हो जाते तो दैत्यराज बलि से मिलने का मार्ग प्रशस्त होता। वे पूरी लगन से अपने अभीष्ट की प्राप्ति के लिए तपस्यारत रहे। जीवन और शरीर का उन्हें कोई मोह नहीं रहा। राजा विक्रमादित्य का हुलिया ऐसा हो गया था कि कोई भी देखकर नहीं कह सकता था कि वे महाप्रतापी और सर्वश्रेष्ठ हैं।

राजा के समीप ही तपस्या करने वाले एक योगी ने उनसे पूछा कि वे इतनी घोर तपस्या क्यों कर रहे हैं। विक्रम का जवाब था- “इहलोक से मुक्ति और परलोक सुधार के लिए।” तपस्वी ने उन्हें कहा कि तपस्या राजाओं का काम नहीं है। राजा को

राजकाज के लिए ईश्वर द्वारा जन्म दिया जाता है और यहीं उसका कर्म है। अगर वह राज-काज से मुँह मोड़ता है तो अपने कर्म से मुँह मोड़ता है। शास्त्रों में कहा गया है कि मनुष्य को अपने कर्म से मुँह नहीं मोड़ना चाहिए। विक्रम ने बड़े ही गंभीर स्वर में उससे कहा कि कर्म करते हुए भी धर्म से कभी मुँह नहीं मोड़ना चाहिए। उन्होंने जब उससे पूछा कि क्या शास्त्रों में किसी भी स्थिति में धर्म से विमुख होने को कहा गया है तो तपस्वी एकदम चुप हो गया। उनके तर्कपूर्ण उत्तर ने उसे आगे कुछ पूछने लायक नहीं छोड़ा। राजा ने अपनी तपस्या जारी रखी। अत्यधिक निर्बलता के कारण एक दिन राजा बेहोश हो गए और काफी देर के बाद होश में आए। वह तपस्वी एक बार फिर उनके पास आया और उनसे तपस्या छोड़ देने को बोला। उसने कहा कि चूँकि राजा गृहस्थ हैं, इसलिए तपस्वियों की भाँति उन्हें तप नहीं करना चाहिए। गृहस्थ को एक सीमा के भीतर ही रहकर तपस्या करनी चाहिए।

जब उसने राजा को बार-बार गृहस्थ धर्म की याद दिलाई और गृहस्थ कर्म के लिए प्रेरित किया तो राजा ने कहा कि वे मन की शान्ति के लिए तपस्या कर रहे हैं। तपस्वी कुछ नहीं बोला और वे फिर तपस्या करने लगे। कमज़ोरी तो थी ही- एक बार फिर वे अचेत हो गए। जब कई घण्टों बाद वे होश में आए तो उन्होंने पाया कि उनका सर भगवान विष्णु की गोद में है। उन्हें भगवान विष्णु को देखकर पता चल गया कि तपस्या से रोकने वाला तपस्वी और कोई नहीं स्वयं भगवान विष्णु थे। विक्रम ने उठकर उन्हें साष्टांग प्रणाम किया तो भगवान ने पूछा वे क्यों इतना कठोर तप कर रहे हैं। विक्रम ने कहा कि उन्हें राजा बलि से भेंट का रास्ता पता करना है। भगवान विष्णु ने उन्हें एक शंख देकर कहा कि समुद्र के बीचों-बीच पाताल लोक जाने का रास्ता है। इस शंख को समुद्र तट पर फूँकने के बाद उन्हें समुद्र देव के दर्शन होंगे और वही उन्हें राजा बलि तक पहुँचने का मार्ग बतलाएँगे। शंख देकर विष्णु अंतर्ध्यान हो गए। विष्णु के दर्शन के बाद विक्रम ने फिर से तपस्या के पहले वाला स्वास्थ्य प्राप्त कर लिया और वैसी ही असीम शक्ति प्राप्त कर ली।

शंख लेकर वे समुद्र के पास आए और पूरी शक्ति से शंख फूँकने लगे। समुद्र देव उपस्थित हुए और समुद्र का पानी दो भागों में विभक्त हो गया। समुद्र के बीचों-बीच अब भूमि मार्ग दिखाई देने लगा। उस मार्ग पर राजा आगे बढ़ते रहे। काफी चलने के बाद वे पाताल लोक पहुँच गए। जब वे राजा बलि के महल के द्वार पर पहुँचे तो द्वारापालों ने उनसे आने का प्रयोजन पूछा। विक्रम ने उन्हें बताया कि राजा बलि के दर्शन के लिए मृत्युलोक के यहाँ आए हैं। एक सैनिक उनका संदेश लेकर गया और काफी देर बाद उनसे आकर बोला कि राजा बलि अभी उनसे नहीं मिल सकते हैं। उन्होंने बार-बार राजा से मिलने का अनुरोध किया पर राजा बलि तैयार नहीं हुए।

राजा ने खिन्न और हताश होकर अपनी तलवार से अपना सर काट लिया। जब प्रहरियों ने यह खबर राजा बलि को दी तो उन्होंने अमृत डलवाकर विक्रम को जीवित करवा दिया। जीवित होते ही विक्रम ने फिर राजा बलि के दर्शन की इच्छा जताई। इस बार प्रहरी संदेश लेकर लौटा कि राजा बलि उनसे महा शिवरात्रि के दिन मिलेंगे। विक्रम को लगा कि बलि ने सिर्फ़ टालने के लिए यह संदेश भिजवाया है। उनके दिल पर चोट लगी और उन्होंने फिर तलवार से अपनी गर्दन काट ली। प्रहरियों में खलबली सच गई और उन्होंने राजा बलि तक विक्रम के बलिदान की खबर पहुँचाई। राजा बलि समझ गए कि

वह व्यक्ति दृढ़ निश्चयी है और बिना भेंट किए जानेवाला नहीं है। उन्होंने फिर नौकरों द्वारा अमृत भिजवाया और उनके लिए संदेश भिजवाया कि भेंट करने को वे राजी हैं।

नौकरों ने अमृत छिड़ककर उन्हें जीवित किया तथा महल में चलकर बलि से भेट करने को कहा। जब वे राजा बलि से मिले तो राजा बलि ने उनसे इतना कष्ट उठाकर आने का कारण पूछा। विक्रम ने कहा कि धार्मिक ग्रन्थों में उनके बारे में बहुत कुछ वर्णित है तथा उनकी दानवीरता और त्याग की चर्चा सर्वत होती है, इसलिए वे उनसे मिलने को उत्सुक थे। राजा बलि उनसे बहुत प्रसन्न हुए तथा विक्रम को एक लाल मूँगा उपहार में दिया और बोले कि वह मूँगा माँगने पर हर वस्तु दे सकता है। मूँगे के बल पर असंभव कार्य भी संभव हो सकते हैं।

विक्रम राजा बलि से विदा लेकर प्रसन्न चित्त होकर मृत्युलोक की ओर लौट चले। पाताल लोक के प्रवेश द्वार के बाहर फिर वही अनन्त गहराई वाला समुद्र बह रहा था। उन्होंने भगवान विष्णु का दिया हुआ शंख फूँका तो समुद्र फिर से दो भागों में बँट गया और उसके बीचों-बीच वही भूमिवाला मार्ग प्रकट हो गया। उस भूमि मार्ग पर चलकर वे समुद्र तट तक पहुँच गये। वह मार्ग गायब हो गया तथा समुद्र फिर पूर्ववत होकर बहने लगा। वे अपने राज्य की ओर चल पड़े। रास्ते में उन्हें एक स्त्री विलाप करती मिली। उसके बाल बिखरे हुए थे और चेहरे पर गहरे विषाद के भाव थे। पास आने पर पता चला कि उसके पति की मृत्यु हो गई है और अब वह बिल्कुल बेसहारा है। विक्रम का दिल उसके दुख को देखकर पसीज गया तथा उन्होंने उसे सांत्वना दी। बलि वाले मूँगे से उसके लिए जीवन दान माँगा। उनका बोलना था कि उस विधवा का मृत पति ऐसे उठकर बैठ गया मानो गहरी नींद से जागा हो। स्त्री के आनन्द की सीमा नहीं रही।

## अद्वाइसवीं पुतली वैदेही

अद्वाइसवीं पुतली का नाम वैदेही था और उसने अपनी कथा इस प्रकार कही- एक बार राजा विक्रमादित्य अपने शयन कक्ष में गहरी निद्रा में लीन थे। उन्होंने एक सपना देखा। एक स्वर्ण महल है जिसमें रत्न, माणिक इत्यादि जड़े हैं। महल में बड़े-बड़े कमरे हैं जिनमें सजावट की अलौकिक चीज़े हैं। महल के चारों ओर उद्यान हैं और उद्यान में हज़ारों तरह के सुन्दर-सुन्दर फूलों से लटे पौधे हैं। उन फूलों पर तरह-तरह की तितलियाँ मँडरा रही और भंवरों का गुंजन पूरे उद्यान में व्याप्त है। फूलों की सुगन्ध चारों ओर फैली हुई है और सारा दृश्य बड़ा ही मनोरम है। स्वच्छ और शीतल हवा बह रही है और महल से कुछ दूरी पर एक योगी साधनारत है। योगी का चेहरा गौर से देखने पर विक्रम को वह अपना हमशा Dल मालूम पड़ा। यह सब देखते-देखते ही विक्रम की आँखें खुल गईं। वे समझ गए कि उन्होंने कोई अच्छा सपना देखा है।

जगने के बाद भी सपने में दिखी हर चीज़ उन्हें स्पष्ट याद थी। उन्हें अपने सपने का मतलब समझ में नहीं आया। सारा दृश्य अलौकिक अवश्य था, मगर मन की उपज नहीं माना जा सकता था। राजा ने बहुत सोचा पर उन्हें याद नहीं आया कि कभी अपने जीवन में उन्होंने ऐसा कोई महल देखा हो चाहे इस तरह के किसी महल की कल्पना की हो। उन्होंने पण्डितों और ज्योतिषियों से अपने सपने की चर्चा की और उन्हें इसकी व्याख्या करने को कहा। सारे विद्वान और पण्डित इस नतीजे पर पहुँचे कि महाराजाधिराज ने सपने में स्वर्ग का दर्शन किया है तथा सपने का अलौकिक महल स्वर्ग के राजा इन्द्र का महल है। देवता शायद उन्हें वह महल दिखाकर उन्हें सशरीर स्वर्ग आने का निमन्त्रण दे चुके हैं।

विक्रम यह सुनकर बड़े आश्र्य में पड़ गए। उन्होंने कभी भी न सोचा था कि उन्हें स्वर्ग आने का इस तरह निमन्त्रण मिलेगा। वे पण्डितों से पूछने लगे कि स्वर्ग जाने का कौन सा मार्ग होगा तथा स्वर्ग यात्रा के लिए क्या-क्या आवश्यकता हो सकती है। काफी मंथन के बाद सारे विद्वानों ने उन्हें वह दिशा बताई जिधर से स्वर्गरोहण हो सकता था तथा उन्हें बतलाया कि कोई पुण्यात्मा जो सतत् भगवान का स्मरण करता है तथा धर्म के पथ से विचलित नहीं होता है वही स्वर्ग जाने का अधिकारी है। राजा ने कहा कि राजपाट चलाने के लिए जानबूझकर नहीं तो भूल से ही अवश्य कोई धर्म विरुद्ध आचरण उनसे हुआ होगा। इसके अलावा कभी-कभी राज्य की समस्या में इतने उलझ जाते हैं कि उन्हें भगवान का स्मरण नहीं रहता है।

इस पर सभी ने एक स्वर से कहा कि यदि वे इस योग्य नहीं होते तो उन्हें स्वर्ग का दर्शन ही नहीं हुआ होता। सबकी सलाह पर उन्होंने राजपुरोहित को अपने साथ लिया और स्वर्ग की यात्रा पर निकल पड़े। पण्डितों के कथन के अनुसार उन्हें यात्रा के दौरान दो पुण्यकर्म भी करने थे। यह यात्रा लम्बी और कठिन थी। विक्रम ने अपना राजसी भेष त्याग दिया था और अत्यन्त साधारण कपड़ों में यात्रा कर रहे थे। रास्ते में एक नगर में रात में विश्राम के लिए रुक गए। जहाँ रुके थे वहाँ उन्हें एक बूढ़ी औरत रोती हुई मिली। उसके माथे पर चिन्ता की लकीरें उभरी हुई थीं तथा गला रोते-रोते झूँधा जा रहा था। विक्रम ने द्रवित होकर उससे उसकी चिन्ता का कारण पूछा तो उसने बताया कि उसका एकमात्र जवान बेटा सुबह ही जंगल गया, लेकिन अभी तक नहीं लौटा है। विक्रम ने जानना चाहा कि वह जंगल किस प्रयोजन से गया। बूढ़ी औरत ने बताया

कि उसका बेटा रोज़ सुबह में जंगल से सूखी लकड़ियाँ लाने जाता है और लकड़ियाँ लाकर नगर में बेचता है। लकड़ियाँ बेचकर जो पासा मिलता है उसी से उनका गुज़ारा होता है।

विक्रम ने कहा कि अब तक वह नहीं आया हे तो आ जाएगा। बूढ़ी औरत ने कहा कि जंगल बहुत घना है और नरभक्षी जानवरों से भरा पड़ा है। उसे शंका है कि कहीं किसी हिंसक जानवर ने उसे अपना ग्रास न बना लिया हो। उसने यह भी बताया कि शाम से वह बहुत सारे लोगों से विनती कर चुकी है कि उसके बेटे का पता लगाए, लेकिन कोई भी जंगल जाने को तैयार नहीं हुआ। उसने अपनी विवशता दिखाई कि वह बूढ़ी और निर्बल है, इसलिए खुद जाकर पता नहीं कर सकती है। विक्रम ने उसे आश्वासन दिया कि वे जाकर उसे ढूँढेंगे।

उन्होंने विश्राम का विचार त्याग और तुरन्त जंगल की ओर चल पड़े। थोड़ी देर बाद उन्होंने जंगल में प्रवेश किया तो देखा कि जंगल सचमुच बहुत घना हो। वे चौकन्ने होकर थोड़ी दूर आए तो उन्होंने देखा कि एक नौजवान कुल्हाड़ी लेकर पेड़ पर दुबका बैठा है और नीचे एक शेर घात लगाए बैठा है। विक्रम ने कोई उपाय ढूँढ़कर शेर को वहाँ से भगा दिया और उस युवक को लेकर नगर लौट आए। बुढ़िया ने बेटे को देखकर विलाप करना छोड़ दिया और विक्रम को ढेरों आशीर्वाद दिए। इस तरह बुढ़िया को चिन्तामुक्त करके उन्होंने एक पुण्य का काम किया।

रात भर विश्राम करने के बाद उन्होंने सुबह फिर से अपनी यात्रा शुरू कर दी। चलते-चलते वे समुद्र तट पर आए तो उन्होंने एक स्त्री को रोते हुए देखा। स्त्री को रोते देख वे उसके पास आए तो देखा कि एक मालवाहक जहाज खड़ा है और कुछ लोग उस जहाज पर सामान लाद रहे हैं। उन्होंने उस स्त्री से उसके रोने का कारण पूछा तो उसने बताया कि बस तीन महीने पहले उसकी विवाह हुआ और वह गर्भवती है। उसका पति इसी जहाज पर कर्मचारी है तथा जहाज का माल लेकर दूर देश जा रहा है। विक्रम ने जब उसे कहा कि इसमें परेशानी की कोई बात नहीं है और कुछ ही समय बाद, उसका पति लौट आएगा तो उसने अपनी चिन्ता का कारण कुछ और ही बताया। उसने बताया कि उसने कल सपने में देखा कि एक मालवाहक जहाज समुद्र के बीच में ही और भयानक तूफान में घिर जाता है।

तूफान इतना तेज है कि जहाज के टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं और उस पर सारे सवार समुद्र में डूब जाते हैं। वह सोच रही है कि अगर वह सपना सच निकला तो उसका क्या होगा। खुद तो किसी प्रकार जी भी लेगी मगर उसके होने वाले बच्चे की परवरिश कैसे होगी। विक्रम को उस पर तरस आया और उन्होंने समुद्र देवता द्वारा प्रदत्त शंख उसे देते हुए कहा- “यह अपने पति को दे दो। जब भी तूफान या अन्य कोई प्राकृतिक विपदा आए तो इसे फूँक देगा। उसके फूँक मारते ही सारी विपत्ति हल जाएगी।”

औरत को उन पर विश्वास नहीं हुआ और वह शंकालु दृष्टि से उन्हें देखने लगी। विक्रम ने उसके चेहरे का भाव पढ़कर शंख की फूँक मारी। शंख की ध्वनि हुई और समुद्र का पानी कोसों दूर चला गया। उस पानी के साथ वह जहाज और उस पर के

सारे कर्मचारी भी कोसों दूर चले गए। अब दूर-दूर तक सिर्फ समुद्र तट फैला न आता था। वह सी और कुछ अन्य लोग जो वहाँ थे हैरान रह गए। उनकी आँखें फटी रह गई। जब विक्रम ने दुबारा शंख फूँका तो समुद्र का पानी फिर से वहाँ हिलोड़े मारने लगा। समुद्र के पानी के साथ वह जहाज भी कर्मचारियों सहित वापस आ गया। अब युवती को उस शंख की चमत्कारिक शक्ति के प्रति कोई शंका नहीं रही। उसने विक्रम से वह शंख लेकर अपनी कृतज्ञता जाहिर की।

विक्रम उस सी को शंख देकर अपनी यात्रा पर निकल पड़े। कुछ दूर चलने के बाद उन्हें एक स्थान पर रुकना पड़ा। आकाश में काली घटाएँ छा गई थीं। बिजलियाँ चमकने लगी थीं। बादल के गर्जन से समूचा वातावरण हिलता प्रतीत होता था। उन बिजलियों के चमक के बीच विक्रम को एक सफेद घोड़ा ज़मीन की ओर उतरता दिख। विक्रम ने ध्यान से उसकी ओर देखा तभी आकाशवाणी हुई-

“महाराजा विक्रमादित्य तुम्हारे जैसा पुण्यात्मा शायद ही कोई हो। तुमने रास्ते में दो पुण्य किए। एक बूढ़ी औरत को चिन्तामुक्त किया और एक सी को सिर्फ शंका दूर करने के लिए वह अनमोल शंख दे दिया जो समुद्र देव ने तुम्हें तुम्हारी साधना से प्रसन्न होकर उपहार दिया था। तुम्हें लेने के लिए एक घोड़ा भेजा जा रहा है जो तुम्हे इन्द्र के महल तक पहुँचा देगा।”

विक्रम ने कहा- “मैं अकेला नहीं हूँ। मेरे साथ राजपुरोहित भी हैं। उनके लिए भी कोई व्यवस्था हो।”

इतना सुनना था कि राजपुरोहित ने कहा- “राजन्, मुझे क्षमा करें। सशरीर स्वर्ग जाने से मैं डरता हूँ। आपका सान्निध्य रहा तो मरने पर स्वर्ग जाऊँगा और अपने को धन्य समझूँगा।”

घोड़ा उनके पास उतरा तो सवारी के लिए सब कुछ से लैस था। राजपुरोहित से विदा लेकर विक्रम उस पर बैठ गए। एड़ लगाते ही घोड़ा तेज़ी से भागा और घने जंगल में पहुँच गया। जंगल में पहुँचकर उसने धरती छोड़ दी और हवा में दौड़ने लगा। यह घुड़सवारी अप्राकृतिक थी, इसलिए काफी कठिन थी, मगर विक्रम पूरी वृद्धता से उस पर बैठे रहे। हवा में कुछ देर उड़ने के बाद वह घोड़ा आकाश में दौड़ने लगा। दौड़ते-दौड़ते वह इन्द्रपुरी आया।

इन्द्रपुरी पहुँचते ही विक्रम को वही सपनों वाला सोने का महल दिख पड़ा। जैसा उन्होंने सपने में देखा था ठीक वैसा ही सब कुछ था। चलते-चलते वे इन्द्रसभा पहुँचे। इन्द्रसभा में सारे देवता विराजमान थे। अप्सराएँ नृत्य कर रही थीं। इन्द्र देव पत्नी के साथ अपने सिंहासन पर विराजमान थे। देवताओं की सभा में विक्रम को देखकर खलबली मच गई। वे सभी एक मानव के सशरीर स्वर्ग आने पर आश्चर्यचकित थे। विक्रम को देखकर इन्द्र खुद उनकी अगवानी करने आ गए और उन्हें अपने आसन पर बैठने को कहा। विक्रम ने यह कहते हुए मना कर दिया कि इस आसन के योग्य वे नहीं हैं। इन्द्र उनकी नम्रता और सरलता से प्रसन्न हो गए। उन्होंने कहा कि विक्रम ने सपने में अवश्य एक योगी को इस महल में देखा होगा। उनका

वह हमशकल और कोई नहीं बल्कि वे खुद हैं। उन्होंने इतना पुण्य अर्जित कर लिया है कि इन्द्र के महल में उन्हें स्थायी स्थान मिल चुका है। इन्द्र ने उन्हें एक मुकुट उपहार में दिया।

इन्द्रलोक में कुछ दिन बिताकर मुकुट लेकर विक्रम अपने राज्य वापस आ गए।

## उन्तीसवीं पुतली मानवती

उन्तीसवीं पुतली मानवती ने इस प्रकार कथा सुनाई- राजा विक्रमादित्य वेश बदलकर रात में धूमा करते थे। ऐसे ही एक दिन धूमते-धूमते नदी के किनारे पहुँच गए। चाँदनी रात में नदी का जल चमकता हुआ बड़ा ही प्यारा दृश्य प्रस्तुत कर रहा था। विक्रम चुपचाप नदी तट पर खड़े थे तभी उनके कानों में “बचाओ-बचाओ” की तेज आवाज पड़ी। वे आवाज की दिशा में दौड़े तो उन्हें नदी की वेगवती धारा से जूझते हुए दो आदमी दिखाई पड़े। गौर से देखा तो उन्हें पता चला कि एक युवक और एक युवती तैरकर किनारे आने की चेष्टा में हैं, मगर नदी की धाराएँ उन्हें बहाकर ले जाती हैं। विक्रम ने बड़ी फुर्ती से नदी में छलांग लगा दी और दोनों को पकड़कर किनारे ले आए। युवती के अंग-अंग से यौवन छलक रहा था। वह अत्यन्त रूपसी थी। उसका रूप देखकर अप्सराएँ भी लज्जित हो जातीं। कोई तपस्वी भी उसे पास पाकर अपनी तपस्या छोड़ देता और गृहस्थ बनकर उसके साथ जीवन गुज़ारने की कामना करता।

दोनों कृतज्ञ होकर अपने प्राण बचाने वाले को देख रहे थे। युवक ने बताया कि वे अपने परिवार के साथ नौका से कही जा रहे थे। नदी के बीच में वे भंवर को नहीं देख सके और उनकी नौका भंवर में जा फँसी। भंवर से निकलने की उन लोगों ने लाख कोशिश की, पर सफल नहीं हो सके। उनके परिवार के सारे सदस्य उस भंवर में समा गए, लेकिन वे दोनों किसी तरह यहाँ तक तैरकर आने में कामयाब हो गए।

राजा ने उनका परिचय पूछा तो युवक ने बताया कि दोनों भाई-बहन हैं और सारंग देश के रहने वाले हैं। विक्रम ने कहा कि उन्हें सकुशल अपने देश भेज दिया जाएगा। उसके बाद उन्होंने उन्हें अपने साथ चलने को कहा और अपने महल की ओर चल पड़े। राजमहल के नजदीक जब वे पहुँचे तो विक्रम को प्रहरियों ने पहचानकर प्रणाम किया। युवक-युवती को तब जाकर मालूम हुआ कि उन्हें अपने प्राणों की परवाह किए बिना बचाने वाला आदमी स्वयं महाराजाधिराज थे। अब तो वे और कृतज्ञताभरी नज़रों से महाराज को देखने लगे।

महल पहुँचकर उन्होंने नौकर-चाकरों को बुलाया तथा सारी सुविधाओं के साथ उनके ठहरने का इंतजाम करने का निर्देश दिया। अब तो दोनों का मन महाराज के प्रति और अधिक आदरभाव से भर गया।

वह युवक अपनी बहन के विवाह के लिए काफी चिन्तित रहता था। उसकी बहन राजकुमारियों से भी सुन्दर थी, इसलिए वह चाहता था कि किसी राजा से उसकी शादी हो। मगर उसकी आर्थिक हालत अच्छी नहीं थी और वह अपने इरादे में कामयाब नहीं हो पा रहा था। जब संयोग से राजा विक्रमादित्य सो उसकी भेंट हो गई तो उसने सोचा कि क्यों न विक्रम को उसकी बहन से शादी का प्रस्ताव दिया जाए। यह विचार आते ही उसने अपनी बहन को ठीक से तैयार होने को कही तथा

उसे साथ लेकर राजमहल उनसे मिलने चल पड़ा। उसकी बहन जब सजकर निकली तो उसका रूप देखने लायक था। उसके रूप पर देवता भी मोहित हो जाते मनुष्य की तो कोई बात ही नहीं।

जब वह राजमहल आया तो विक्रम ने उससे उसका हाल-चाल पूछा तथा कहा कि उसके जाने का समुचित प्रबन्ध कर दिया गया है। उसने राजा की कृतज्ञता जाहिर करते हुए कहा कि उन्होंने जो उपकार उस पर किये उसे आजीवन वह नहीं भूलेगा। उसके बाद उसने विक्रम से एक छोटा-सा उपहार स्वीकार करने को कहा। राजा ने मुस्कुराकर अपनी अनुमति दे दी।

राजा को प्रसन्न देखकर उसने सोचा कि वे उसकी बहन पर मोहित हो गए हैं। उसका हौसला बढ़ गया। उसने कहा कि वह अपनी बहन उनको उपहार देना चाहता है। विक्रम ने कहा कि उसका उपहार उन्हें स्वीकार है। अब उसको पूरा विश्वास हो गया कि विक्रम उसकी बहन को रानी बना लेंगे। तभी राजा ने कहा कि आज से तुम्हारी बहन राजा विक्रमादित्य की बहन के रूप में जानी जाएगी तथा उसका विवाह वह कोई योग्य वर ढूँढकर पूरे धूम-धाम से करेंगे।

वह विक्रम का मुँह ताकता रह गया। उसे सपने में भी नहीं भान था कि उसकी बहन की सुन्दरता को अनदेखा कर विक्रम उसे बहन के रूप में स्वीकार करेंगे। क्या कोई ऐश्वर्यशाली राजा विषय-वासना से इतना ऊपर रह सकता है।

छोड़ी देर बाद उसने संयत होकर कहा कि उदयगिरि का राजकुमार उदयन उसकी बहन की सुन्दरता पर मोहित है तथा उससे विवाह की इच्छा भी व्यक्त कर चुका है। राजा ने एक पंडित को बुलाया तथा बहुत सारा धन भेंट के रूप में देकर उदयगिरि राज्य विवाह का प्रस्ताव लेकर भेजा। पंडित उसी शाम लौट गया और उसके चेहरे पर हवाइयाँ उड़ रही थीं। पूछने पर उसने बताया कि राह में कुछ डाकुओं ने घेरकर सब कुछ लूट लिया। सुनकर राजा स्तब्ध रह गए। उन्हें आश्र्य हुआ कि इतनी अच्छी शासन-व्यवस्था के बावजूद भी डाकू लुटेरे कैसे सक्रिय हो गए। इस बार उन्होंने पंडित को कुछ अश्वारहियों के साथ धन लेकर भेजा।

उसी रात विक्रम वेश बदलकर उन डाकुओं का पता लगाने निकल पड़े। वे उस निर्जन स्थान पर पहुँचे जहाँ पंडित को लूट लिया गया था। एक तरफ उन्हें चार आदमी बैठे दिख पड़े। राजा समझा गए कि वे लुटेरे हैं। विक्रम को कोई गुप्तचर समझा। राजा ने उनसे भयभीत नहीं होने को कहा और अपने आपको भी उनकी तरह एक चोर ही बताया। इस पर उन्होंने कहा कि वे चोर नहीं बल्कि इज्जतदार लोग हैं और किसी खास मसले पर विचार-विमर्श के लिए एकांत की खोज में यहाँ पहुँचे हैं। राजा ने उनसे बहाना न बनाने के लिए कहा और उन्हें अपने दल में शामिल कर लेने को कहा। तब चोरों ने खुलासा किया कि उन चारों में चार अलग-अलग खुबियाँ हैं। एक चोरी का शुभ मुहू निकालता था, दूसरा परिन्दे-जानवरों की ज़बान समझता था, तीसरा अदृश्य होने की कला जानता था तथा चौथा भयानक से भयानक यातना पाकर भी उफ़ तक

नहीं करता था। विक्रम ने उनका विश्वास जीतने के लिए कहा- “मैं कहीं भी छिपाया धन देख सकता हूँ।” जब उन्होंने यह विशेषता सुनी तो विक्रम को अपनी टोली में शामिल कर लिया।

उसके बाद उन्होंने अपने ही महल के एक हिस्से में चोरी करने की योजना बनाई। उस जगह पर शाही खज़ाने का कुछ माल छिपा था। वे चोरों को वहाँ लेकर आए तो चारों चोर बड़े ही खुश हुए। उन्होंने खुशी-खुशी सारा माल झोली में डाला और बाहर निकलने लगे। चौकस प्रहरियों ने उन्हें पकड़ लिया।

सुबह में जब राजा के दरबार में बंदी बनाकर उन्हें पेश किया गया तो वे डर से पत्ते की तरह काँपने लगे। उन्होंने अपने पाँचवे साथी को सिंहासन पर आरूढ़ देखा। वे गुमसूम खड़े राजदण्ड की प्रतीक्षा करने लगे। मगर विक्रम ने उन्हें कोई दण्ड नहीं दिया। उन्हें अभयदान देकर उन्होंने उनसे अपराध न करने का वचन लिया और अपनी खूबियों का इस्तेमाल लोगों की भलाई के लिए करने का आदेश दिया। चारों ने मन ही मन अपने राजा की महानता स्वीकार कर ली और भले आदमियों की तरह जीवन यापन का फैसला कर लिया। राजा ने उन्हें सेना में बहाल कर लिया।

उदयन ने भी राजा विक्रम की मुँहबोली बहन से शादी का प्रस्ताव प्रसन्न होकर स्वीकार कर लिया। शुभ मुहू में विक्रम ने उसी धूम-धाम से उसकी शादी उदयन के साथ कर दी जिस तरह किसी राजकुमारी की होती है।

## तीसवीं पुतली जयलक्ष्मी

तीसवीं पुतली जयलक्ष्मी ने जो कथा कही वह इस प्रकार है- राजा विक्रमादित्य जितने बड़े राजा थे उतने ही बड़े तपस्वी। उन्होंने अपने तप से जान लिया कि वे अब अधिक से अधिक छः महीने जी सकते हैं। अपनी मृत्यु को आसन्न समझकर उन्होंने वन में एक कुटिया बनवा ली तथा राज-काज से बचा हुआ समय साधना में बिताने लगे। एक दिन राजमहल से कुटिया की तरफ आ रहे थे कि उनकी नज़र एक मृग पर पड़ी। मृग अद्भुत था और ऐसा मृग विक्रम ने कभी नहीं देखा था। उन्होंने धनुष हाथ में लेकर दूसरा हाथ तरकश में डाला ही था कि मृग उनके समीप आकर मनुष्य की बोली में उनसे अपने प्राणों की भीख माँगने लगा। विक्रम को उस मृग को मनुष्यों की तरह बोलते हुए देख बड़ा आश्चर्य हुआ और उनका हाथ स्वतः थम गया।

विक्रम ने उस मृग से पूछा कि वह मनुष्यों की तरह कैसे बोल लेता है तो वह बोला कि यह सब उनके दर्शन के प्रभाव से हुआ है। विक्रम की जिज्ञासा अब और बढ़ गई। उन्होंने उस मृग को पूछा कि ऐसा क्यों हुआ तो उसने बताना शुरू किया।

“मैं जन्मजात मृग नहीं हूँ। मेरा जन्म मानव कुल में एक राजा के यहाँ हुआ। अन्य राजकुमारों की भाँति मुझे भी शिकार खेलने का बहुत शौक था। शिकार के लिए मैं अपने घोड़े पर बहुत दूर तक घने जंगलों में घुस जाता था। एक दिन मुझे कुछ दूरी पर मृग होने का आभास हुआ और मैंने आवाज़ को लक्ष्य करके एक वाण चलाया। दरअसल वह आवाज़ एक साधनारत योगी की थी जो बहुत धीमें स्वर में मंत्रोच्चार कर रहा था। तीर उसे तो नहीं लगा, पर उसकी कनपटी को छूता हुआ पूरो वेग से एक वृक्ष के तने में घुस गया। मैं अपने शिकार को खोजते-खोजते वहाँ तक पहुँचा तो पता चला मुझसे कैसा अनिष्ट होने से बच गया। योगी की साधना में विघ्न पड़ा था। इसलिए वह काफी क्रुद्ध हो गया था। उसने जब मुझे अपने सामने खड़ा पाया तो समझ गया कि वह वाण मैंने चलाया था। उसने लाल आँखों से घूरते हुए मुझे श्राप दे दिया। उसने कहा- “ओ मृग का शिकार पसंद करने वाले मूर्ख युवक, आज से खुद मृग बन जा। आज के बाद से आखेटकों से अपने प्राणों की रक्षा करता रह।”

उसने श्राप इतनी जल्दी दे दिया कि मुझे अपनी सफ़ाई में कुछ कहने का मौका नहीं मिला। श्राप की कल्पना से ही मैं भय से सिहर उठा। मैं योगी के पैरों पर गिर पड़ा तथा उससे श्राप मुक्त करने की प्रार्थना करने लगा। मैंने रो-रो कर उससे कहा कि उसकी साधना में विघ्न उत्पन्न करने का मेरा कोई इरादा नहीं था और यह सब अनजाने में मुझसे हो गया। मेरी आँखों में पश्चाताप के आँसू देखकर उस योगी को दया आ गई। उसने मुझसे कहा कि श्राप वापस तो नहीं लिया जा सकता, लेकिन वह उस श्राप के प्रभाव को सीमित ज़रूर कर सकता है। मैंने कहा कि जितना अधिक संभव है उतना वह श्राप का प्रभाव कम कर दे तो उसने कहा- “तुम मृग बनकर तब तक भटकते रहोगे जब तक महान् यशस्वी राजा विक्रमादित्य के दर्शन नहीं हो जाएँ। विक्रमादित्य के दर्शन से ही तुम मनुष्यों की भाँति बोलना शुरू कर दोगे।”

विक्रम को अब जिज्ञासा हुई कि वह मनुष्यों की भाँति बोल तो रहा है मगर मनुष्य में परिवर्तित नहीं हुआ है। उन्होंने उससे पूछा- “तुम्हें मृग रूप से कब मुक्ति मिलेगी? कब तुम अपने वास्तविक रूप को प्राप्त करोगे?

वह श्रापित राजकुमार बोला- “इससे भी मुझे मुक्ति बहुत शीघ्र मिल जाएगी। उस योगी के कथनानुसार मैं अगर आपको साथ लेकर उसके पास जाऊँ तो मेरा वास्तविक रूप मुझे तुरन्त ही वापस मिल जाएगा।”

विक्रम खुश थे कि उनके हाथ से शापग्रस्त राजकुमार की हत्या नहीं हुई अन्यथा उन्हें निरपराध मनुष्य की हत्या का पाप लग जाता और वे ग्लानि तथा पश्चाताप की आग में जल रहे होते। उन्होंने मृगरूपी राजकुमार से पूछा- “क्या तुम्हें उस योगी के निवास के बारे में कुछ पता है? क्या तुम मुझे उसके पास लेकर चल सकते हो?”

उस राजकुमार ने कहा- “हाँ, मैं आपको उसकी कुटिया तक अभी लिए चल सकता हूँ। संयोग से वह योगी अभी भी इसी जंगल में थोड़ी दूर पर साधना कर रहा है।”

वह मृग आगे-आगे चला और विक्रम उसका अनुसरण करते-करते चलते रहे। थोड़ी दूर चलने के पश्चात उन्हें एक वृक्ष पर उलटा होकर साधना करता एक योगी दिखा। उनकी समझ में आ गया कि राजकुमार इसी योगी की बात कर रहा था। वे जब समीप आए तो वह योगी उन्हें देखते ही वृक्ष से उतरकर सीधा खड़ा हो गया। उसने विक्रम का अभिवादन किया तथा दर्शन देने के लिए उन्हें नतमस्तक होकर धन्यवाद दिया।

विक्रम समझ गए कि वह योगी उनकी ही प्रतीक्षा कर रहा था। लेकिन उन्हें जिज्ञासा हुई कि वह उनकी प्रतीक्षा क्यों कर रहा था। पूछने पर उसने उन्हें बताया कि सपने में एक दिन इन्द्र देव ने उन्हें दर्शन देकर कहा था कि महाराजा विक्रमादित्य ने अपने कर्मों से देवताओं-सा स्थान प्राप्त कर लिया है तथा उनके दर्शन प्राप्त करने वाले को इन्द्र देव या अन्य देवताओं के दर्शन का फल प्राप्त होता है। “मैं इतनी कठिन साधना सिर्फ आपके दर्शन का लाभ पाने के लिए कर रहा था।”- उस योगी ने कहा।

विक्रम ने पूछा कि अब तो उसने उनके दर्शन प्राप्त कर लिए, क्या उनसे वह कुछ और चाहता है। इस पर योगी ने उनसे उनके गले में पड़ी इन्द्र देव के मूँगे वाली माला मांगी। राजा ने खुशी-खुशी वह माला उसे दे दी। योगी ने उनका आभार प्रकट किया ही था कि श्रापित राजकुमार फिर से मानव बन गया। उसने पहले विक्रम के फिर उस योगी के पाँव छूए।

राजकुमार को लेकर विक्रम अपने महल आए। दूसरे दिन अपने रथ पर उसे बिठा उसके राज्य चल दिए। मगर उसके राज्य में प्रवेश करते ही सैनिकों की टुकड़ी ने उनके रथ को चारों ओर से घेर लिया तथा राज्य में प्रवेश करने का उनका प्रयोजन पूछने लगे। राजकुमार ने अपना परिचय दिया और रास्ता छोड़ने को कहा। उसने जानना चाहा कि उसका रथ रोकने की

सैनिकों ने हिम्मत कैसे की। सैनिकों ने उसे बताया कि उसके माता-पिता को बन्दी बनाकर कारागार में डाल दिया गया है और अब इस राज्य पर किसी और का अधिकार हो चुका है। चूँकि राज्य पर अधिकार करते वक्त राजकुमार का कुछ पता नहीं चला, इसलिए चारों तरफ गुप्तचर उसकी तलाश में फैला दिए गये थे। अब उसके खुद हाज़िर होने से नए शासक का मार्ग और प्रशस्त हो गया है।

राजा विक्रमादित्य ने उन्हें अपना परिचय नहीं दिया और खुद को राजकुमार के दूत के रूप में पेश करते हुए कहा कि उनका एक संदेश नये शासक तक भेजा जाए। उन्होंने उस टुकड़ी के नायक को कहा कि नये शासक के सामने दो विकल्प हैं- या तो वह असली राजा और रानी को उनका राज्य सौंपकर चला जाए या युद्ध की तैयारी करे।

उस सेनानायक को बड़े अजीब लगा। उसने विक्रम का उपहास करते हुए पूछा कि युद्ध कौन करेगा। क्या वही दोनों युद्ध करेंगे। उसको उपहास करते देख उनका क्रोध साँतवें आसमान पर पहुँच गया। उन्होंने तलवार निकाली और उसका सर धड़ से अलग कर दिया। सेना में भगदड़ मच गई। किसी ने दौड़कर नए शासक को खबर की। वह तुरन्त सेना लेकर उनकी ओर दौड़ा।

विक्रम इस हमले के लिए तैयार बैठे थे। उन्होंने दोनों बेतालों का स्मरण किया तथा बेतालों ने उनका आदेश पाकर रथ को हवा में उठ लिया। उन्होंने वह तिलक लगाया जिससे अदृश्य हो सकते थे और रथ से कूद गये। अदृश्य रहकर उन्होंने दुश्मनों को गाजर-मूली की तरह काटना शुरू कर दिया। जब सैकड़ों सैनिक मारे गए और दुश्मन नज़र नहीं आया तो सैनिकों में भगदड़ मच गई और राजा को वहीं छोड़ अधिकांश सैनिक रणक्षेत्र से भाग खड़े हुए। उन्हें लगा कि कोई पैशाचिक शक्ति उनका मुकाबला कर रही है। नए शासक का चेहरा देखने लायक था। वह आश्र्यचकित और भयभीत था ही, हताश भी दिख रहा था।

उसे हतप्रभ देख विक्रम ने अपनी तलवार उसकी गर्दन पर रख दी तथा अपने वास्तविक रूप में आ गए। उन्होंने उस शासक से अपना परिचय देते हुए कहा कि या तो वह इसी क्षण यह राज्य छोड़कर भाग जाए या प्राण दण्ड के लिए तैयार रहे। वह शासक विक्रमादित्य की शक्ति से परिचित था तथा उनका शौर्य आँखों से देख चुका था, अतः वह उसी क्षण उस राज्य से भाग गया।

वास्तविक राजा-रानी को उनका राज्य वापस दिलाकर वे अपने राज्य की ओर चल पड़े। रास्ते में एक जंगल पड़ा। उस जंगल में एक मृग उनके पास आया तथा एक सिंह से अपने को बचाने को बोला। मगर महाराजा विक्रमादित्य ने उसकी मदद नहीं की। वे भगवान के बनाए नियम के विरुद्ध नहीं जा सकते थे। सिंह भूखा था और मृग आदि जानवर ही उसकी क्षुधा शान्त कर सकते थे। यह सोचते हुए उन्होंने सिंह को मृग का शिकार करने दिया।

## इकत्तीसवीं पुतली कौशल्या

इकत्तीसवीं पुतली जिसका नाम कौशल्या था, ने अपनी कथा इस प्रकार कही- राजा विक्रमादित्य वृद्ध हो गए थे तथा अपने योगबल से उन्होंने यह भी जान लिया कि उनका अन्त अब काफी निकट है। वे राज-काज और धर्म कार्य दोनों में अपने को लगाए रखते थे। उन्होंने वन में भी साधना के लिए एक आवास बना रखा था। एक दिन उसी आवास में एक रात उन्हें अलौकिक प्रकाश कहीं दूर से आता मालूम पड़ा। उन्होंने गौर से देखा तो पता चला कि सारा प्रकाश सामने वाली पहाड़ियों से आ रहा है। इस प्रकाश के बीच उन्हें एक दमकता हुआ सुन्दर भवन दिखाई पड़ा। उनके मन में भवन देखने की जिज्ञासा हुई और उन्होंने काली द्वारा प्रदत्त दोनों बेतालों का स्मरण किया। उनके आदेश पर बेताल उन्हें पहाड़ी पर ले आए और उनसे बोले कि वे इसके आगे नहीं जा सकते। कारण पूछने पर उन्होंने बताया कि उस भवन के चारों ओर एक योगी ने तंत्र का घेरा डाल रखा है तथा उस भवन में उसका निवास है। उन घेरों के भीतर वही प्रवेश कर सकता है जिसका पुण्य उस योगी से अधिक हो।

विक्रम ने सच जानकर भवन की ओर कदम बढ़ा दिया। वे देखना चाहते थे कि उनका पुण्य उस योगी से अधिक है या नहीं। चलते-चलते वे भवन के प्रवेश द्वार तक आ गए। एकाएक कहीं से चलकर एक अग्नि पिण्ड आया और उनके पास स्थिर हो गया। उसी समय भीतर से किसी का आज्ञाभरा स्वर सुनाई पड़ा। वह अग्निपिण्ड सरककर पीछे चला गया और प्रवेश द्वार साफ़ हो गया। विक्रम अन्दर घुसे तो वही आवाज़ उनसे उनका परिचय पूछने लगी। उसने कहा कि सब कुछ साफ़-साफ़ बताया जाए नहीं तो वह आने वाले को श्राप से भ कर देगा।

विक्रम तब तक कक्ष में पहुँच चुके थे और उन्होंने देखा कि योगी उठ खड़ा हुआ। उन्होंने जब उसे बताया कि वे विक्रमादित्य हैं तो योगी ने अपने को भाग्यशाली बताया। उसने कहा कि विक्रमादित्य के दर्शन होंगे यह आशा उसे नहीं थी। योगी ने उनका खूब आदर-सत्कार किया तथा विक्रम से कुछ माँगने को बोला। राजा विक्रमादित्य ने उससे तमाम सुविधाओं सहित वह भवन माँग लिया।

विक्रम को वह भवन सौंपकर योगी उसी वन में कहीं चला गया। चलते-चलते वह काफी दूर पहुँचा तो उसकी भेंट अपने गुरु से हुई। उसके गुरु ने उससे इस तरह भटकने का कारण जानना चाहा तो वह बोला कि भवन उसने राजा विक्रमादित्य को दान कर दिया है। उसके गुरु को हँसी आ गई। उसने कहा कि इस पृथ्वी के सर्वश्रेष्ठ दानवीर को वह क्या दान करेगा और उसने उसे विक्रमादित्य के पास जाकर ब्राह्मण रूप में अपना भवन फिर से माँग लेने को कहा। वह वेश बदलकर उस कुटिया में विक्रम से मिला जिसमें वे साधना करते थे। उसने रहने की जगह की याचना की। विक्रम ने उससे अपनी इच्छित जगह माँगने को कहा तो उसने वह भवन माँगा। विक्रम ने मुस्कुराकर कहा कि वह भवन ज्यों का त्यों छोड़कर वे उसी समय आ गए थे। उन्होंने बस उसकी परीक्षा लेने के लिए उससे वह भवन लिया था।

इस कथा के बाद इकतीसवीं पुतली ने अपनी कथा खत्म नहीं की। वह बोली- राजा विक्रमादित्य भले ही देवताओं से बढ़कर गुण वाले थे और इन्द्रासन के अधिकारी माने जाते थे, वे थे तो मानव ही। मृत्युलोक में जन्म लिया था, इसलिए एक दिन उन्होंने इहलीला त्याग दी। उनके मरते ही सर्वत्र हाहाकार मच गया। उनकी प्रजा शोकाकुल होकर रोने लगी। जब उनकी चिता सजी तो उनकी सभी रानियाँ उस चिता पर सती होने को चढ़ गईं। उनकी चिता पर देवताओं ने फूलों की वर्षा की।

उनके बाद उनके सबसे बड़े पुत्र को राजा घोषित किया गया। उसका धूमधाम से तिलक हुआ। मगर वह उनके सिंहासन पर नहीं बैठ सका। उसको पता नहीं चला कि पिता के सिंहासन पर वह क्यों नहीं बैठ सकता है। वह उलझन में पड़ा था कि एक दिन स्वप्न में विक्रम खुद आए। उन्होंने पुत्र को उस सिंहासन पर बैठने के लिए पहले देवत्व प्राप्त करने को कहा। उन्होंने उसे कहा कि जिस दिन वह अपने पुण्य-प्रताप तथा यश से उस सिंहासन पर बैठने लायक होगा तो वे खुद उसे स्वप्न में आकर बता देंगे। मगर विक्रम उसके सपने में नहीं आए तो उसे नहीं सूझा कि सिंहासन का किया क्या जाए। पंडितों और विद्वानों के परामर्श पर वह एक दिन पिता का स्मरण करके सोया तो विक्रम सपने में आए। सपने में उन्होंने उससे उस सिंहासन को ज़मीन में गड़वा देने के लिए कहा तथा उसे उज्जैन छोड़कर अम्बावती में अपनी नई राजधानी बनाने की सलाह दी। उन्होंने कहा कि जब भी पृथ्वी पर सर्वगुण सम्पन्न कोई राजा कालान्तर में पैदा होगा, यह सिंहासन खुद-ब-खुद उसके अधिकार में चला जाएगा।

पिता के स्वप्न वाले आदेश को मानकर उसने सुबह में मजदूरों को बुलवाकर एक खूब गहरा गड्ढा खुदवाया तथा उस सिंहासन को उसमें दबवा दिया। वह खुद अम्बावती को नई राजधानी बनवाकर शासन करने लगा।

## बत्तीसवीं पुतली रानी रूपवती

बत्तीसवीं पुतली रानी रूपवती ने राजा भोज को सिंहासन पर बैठने की कोई रुचि नहीं दिखाते देखा तो उसे अचरज हुआ। उसने जानना चाहा कि राजा भोज में आज पहले वाली व्यग्रता क्यों नहीं है। राजा भोज ने कहा कि राजा विक्रमादित्य के देवताओं वाले गुणों की कथाएँ सुनकर उन्हें ऐसा लगा कि इतनी विशेषताएँ एक मनुष्य में असम्भव हैं और मानते हैं कि उनमें बहुत सारी कमियाँ हैं। अतः उन्होंने सोचा है कि सिंहासन को फिर वैसे ही उस स्थान पर गढ़वा देंगे जहाँ से इसे निकाला गया है।

राजा भोज का इतना बोलना था कि सारी पुतलियाँ अपनी रानी के पास आ गईं। उन्होंने हर्षित होकर राजा भोज को उनके निर्णय के लिए धन्यवाद दिया। पुतलियों ने उन्हें बताया कि आज से वे भी मुक्त हो गईं। आज से यह सिंहासन बिना पुतलियों का हो जाएगा। उन्होंने राजा भोज को विक्रमादित्य के गुणों का आंशिक स्वामी होना बतलाया तथा कहा कि इसी योग्यता के चलते उन्हें इस सिंहासन के दर्शन हो पाये। उन्होंने यह भी बताया कि आज से इस सिंहासन की आभा कम पड़ जाएगी और धरती की सारी चीजों की तरह इसे भी पुराना पड़कर नष्ट होने की प्रक्रिया से गुज़रना होगा।

इतना कहकर उन पुतलियों ने राजा से विदा ली और आकाश की ओर उड़ गई। पलक झापकते ही सारी की सारी पुतलियाँ आकाश में विलीन हो गईं।

पुतलियों के जाने के बाद राजा भोज ने कर्मचारियों को बुलवाया तथा गड्ढा खुदवाने का निर्देश दिया। जब मजदूर बुलवाकर गड़ढा खोद डाला गया तो वेद मन्त्रों का पाठ करवाकर पूरी प्रजा की उपस्थिति में सिंहासन को गड्ढे में दबवा दिया। मिट्टी डालकर फिर वैसा ही टीला निर्मित करवाया गया जिस पर बैठकर चरवाहा अपने फैसले देता था। लेकिन नया टीला वह चमत्कार नहीं दिखा सका जो पुराने वाले टीले में था।

## उपसंहार

कुछ भिन्नताओं के साथ हर लोकप्रिय संस्करण में उपसंहार के रूप में एक कथा और मिलती है। उसमें सिंहासन के साथ पुनः दबवाने के बाद क्या गुज़रा- यह वर्णित है। आधिकारिक संस्कृत संस्करण में यह उपसंहार रूपी कथा नहीं भी मिल सकती है, मगर जन साधारण में काफी प्रचलित है।

कई साल बीत गए। वह टीला इतना प्रसिद्ध हो चुका था कि सुदूर जगहों से लोग उसे देखने आते थे। सभी को पता था कि इस टीले के नीचे अलौकिक गुणों वाला सिंहासन दबा पड़ा है। एक दिन चोरों के एक गिरोह ने फैसला किया कि उस सिंहासन को निकालकर उसके टुकड़े-टुकड़े कर बेच देना चाहते थे। उन्होंने टीले से मीलों पहले एक गङ्गा खोदा और कई महीनों की मेहनत के बाद सुरंग खोदकर उस सिंहासन तक पहुँचे। सिंहासन को सुरंग से बाहर लाकर एक निर्जन स्थान पर उन्होंने हथौड़ों के प्रहार से उसे तोड़ना चाहा। चोट पड़ते ही ऐसी भयानक चिंगारी निकलती थी कि तोड़ने वाले को जलाने लगती थी। सिंहासन में इतने सारे बहुमूल्य रत्न-माणिक्य जड़े हुए थे कि चोर उन्हें सिंहासन से अलग करने का मोह नहीं त्याग रहे थे।

सिंहासन पूरी तरह सोने से निर्मित था, इसलिए चोरों को लगता था कि सारा सोना बेच देने पर भी कई हज़ार स्वर्ण मुद्राएँ मिल जाएंगी और उनके पास इतना अधिक धन जमा हो जाएगा कि उनके परिवार में कई पुरखों तक किसी को कुछ करने की ज़रूरत नहीं पड़ेगी। वे सारा दिन प्रयास करते रहे मगर उनके प्रहारों से सिंहासन को रक्ती भर भी क्षति नहीं पहुँची। उल्टे उनके हाथ चिंगारियों से झूलस गए और चिंगारियों को बार-बार देखने से उनकी आँखें दुखने लगीं। वे थककर बैठ गए और सोचते-सोचते इस नतीजे पर पहुँचे कि सिंहासन भुतहा है। भुतहा होने के कारण ही राजा भोज ने इसे अपने उपयोग के लिए नहीं रखा। महल में इसे रखकर ज़रूर ही उन्हें कुछ परेशानी हुई होगी, तभी उन्होंने ऐसे मूल्यवान सिंहासन को दुबारा ज़मीन में दबवा दिया। वे इसका मोह राजा भोज की तरह ही त्यागने की सोच रहे थे। तभी उनका मुखिया बोला कि सिंहासन को तोड़ा नहीं जा सकता, पर उसे इसी अवस्था में उठाकर दूसरी जगह ले जाया जा सकता है।

चोरों ने उस सिंहासन को अच्छी तरह कपड़े में लपेट दिया और उस स्थान से बहुत दूर किसी अन्य राज्य में उसे उसी रूप में ले जाने का फैसला कर लिया। वे सिंहासन को लेकर कुछ महीनों की यात्रा के बाद दक्षिण के एक राज्य में पहुँचे। वहाँ किसी को उस सिंहासन के बारे में कुछ पता नहीं था। उन्होंने जौहरियों का वेश धरकर उस राज्य के राजा से मिलने की तैयारी की। उन्होंने राजा को वह रत्न जड़ित स्वर्ण सिंहासन दिखाते हुए कहा कि वे बहुत दूर के रहने वाले हैं तथा उन्होंने अपना सारा धन लगाकर यह सिंहासन तैयार करवाया है।

राजा ने उस सिंहासन की शुद्धता की जाँच अपने राज्य के बड़े-बड़े सुनारों और जौहरियों से करवाई। सबने उस सिंहासन की सुन्दरता और शुद्धता की तारीफ करते हुए राजा को वह सिंहासन खरीद लेने की सलाह दी। राजा ने चोरों को उसका मुँहमाँगा मूल्य दिया और सिंहासन अपने बैठने के लिए ले लिया। जब वह सिंहासन दरबार में लगाया गया तो सारा दरबार

अलौकिक रोशनी से जगमगाने लगा। उसमें जड़े हीरों और माणिक्यों से बड़ी मनमोहक आभा निकल रहीं थीं। राजा का मन भी ऐसे सिंहासन को देखकर अत्यधिक प्रसन्न हुआ। शुभ मुहूर देखकर राजा ने सिंहासन की पूजा विद्वान पंडितों से करवाई और उस सिंहासन पर नित्य बैठने लगा।

सिंहासन की चर्चा दूर-दूर तक फैलने लगी। बहुत दूर-दूर से राजा उस सिंहासन को देखने के लिए आने लगे। सभी आने वाले उस राजा के भाग्य को धन्य कहते, क्योंकि उसे ऐसा अद्भुत सिंहासन पर बैठने का अवसर मिला था। धीरे-धीरे यह प्रसिद्धि राजा भोज के राज्य तक भी पहुँची। सिंहासन का वर्णन सुनकर उनको लगा कि कहीं विक्रमादित्य का सिंहासन न हो। उन्होंने तत्काल अपने कर्मचारियों को बुलाकर विचार-विमर्श किया और मज़दूर बुलवाकर टीले को फिर से खुदवाया। खुदवाने पर उनकी शंका सत्य निकली और सुरंग देखकर उन्हें पता चल गया कि चोरों ने वह सिंहासन चुरा लिया। अब उन्हें यह आश्वर्य हुआ कि वह राजा विक्रमादित्य के सिंहासन पर आरुढ़ कैसे हो गया। क्या वह राजा सचमुच विक्रमादित्य के समकक्ष गुणों वाला है?

उन्होंने कुछ कर्मचारियों को लेकर उस राज्य जाकर सब कुछ देखने का फैसला किया। काफी दिनों की यात्रा के बाद वहाँ पहुँचे तो उस राजा से मिलने उसके दरबार पहुँचे। उस राजा ने उनका पूरा सत्कार किया तथा उनके आने का प्रयोजन पूछा। राजा भोज ने उस सिंहासन के बारे में राजा को सब कुछ बताया। उस राजा को बड़ा आश्वर्य हुआ। उसने कहा कि उसे सिंहासन पर बैठने में कभी कोई परेशानी नहीं हुई।

राजा भोज ने ज्योतिषियों और पंडितों से विमर्श किया तो वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि हो सकता है कि सिंहासन अब अपना सारा चमत्कार खो चुका हो। उन्होंने कहा कि हो सकता है कि सिंहासन अब सोने का न हो तथा रत और माणिक्य काँच के टुकड़े मात्र हों।

उस राजा ने जब ऐसा सुना तो कहा कि यह असम्भव है। चोरों से उसने उसे खरीदने से पहले पूरी जाँच करवाई थी। लेकिन जब जौहरियों ने फिर से उसकी जाँच की तो उन्हें घोर आश्वर्य हुआ। सिंहासन की चमक फीकी पड़ गई थी तथा वह एकदम पीतल का हो गया था। रत-माणिक्य की जगह काँच के रंगीन टुकड़े थे। सिंहासन पर बैठने वाले राजा को भी बहुत आश्वर्य हुआ। उसने अपने ज्योतिषियों और पण्डितों से सलाह की तथा उन्हें गणना करने को कहा। उन्होंने काफी अध्ययन करने के बाद कहा कि यह चमत्कारी सिंहासन अब मृत हो गया है। इसे अपवित्र कर दिया गया और इसका प्रभाव जाता रहा।

उन्होंने कहा- “अब इस मृत सिंहासन का शासकत विधि से अंतिम संस्कार कर दिया जाना चाहिए। इसे जल में प्रवाहित कर दिया जाना चाहिए।”

उस राजा ने तत्काल अपने कर्मचारियों को बुलाया तथा मज़दूर बुलवा कर मंलोच्चार के बीच उस सिंहासन को कावेरी नदी में प्रवाहित कर दिया ।

समय बीतता रहा । वह सिंहासन इतिहास के पन्नों में सिमटकर रह गया । लोक कथाओं और जन-श्रुतियों में उसकी चर्चा होती रही । अनेक राजाओं ने विक्रमादित्य का सिंहासन प्राप्त करने के लिए कालान्तर में एक से बढ़कर एक गोता खोरो को तैनात किया और कावेरी नदी को छान मारा गया । मगर आज तक उसकी झलक किसी को नहीं मिल पाई है । लोगों का विश्वास है कि आज भी विक्रमादित्य की सी खूबियों वाला अगर कोई शासक हो तो वह सिंहासन अपनी सारी विशेषताओं और चमक के साथ बाहर आ जाएगा ।

\*\* समाप्त \*\*